पापा का बचपन

राजकुमार, द्रोणगिरि

लेखक की रचनाएँ

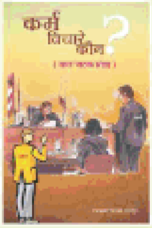

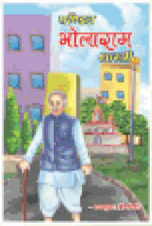

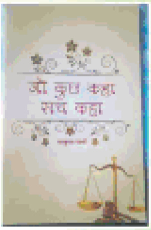

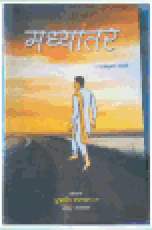

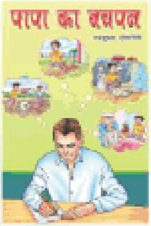

पापा

का

बचपन

– राजकुमार जैन,
द्रोणगिरि

"जब क्रोध, मान, माया, लोभ कषाय, विषय माने टी.वी. देखना, पंखा-कूलर आदि की हवा एवं आहार का त्याग किया जाता है एवं आत्मा के समीप वास किया जाता है, तब सच्चा उपवास होता है। विषय के अभाव व निजानंद के जोर से मुनिराज को आहार का स्मरण भी नहीं आता, उनका समय तो समय अर्थात् आत्मा के अनुभव में ही बीतता है।"

– इसी पुस्तक से

समर्पण चेरिटेबल ट्रस्ट का 24 वाँ पुष्प

पापा का बचपन

(एक प्रेरणात्मक लघु-संस्मरणात्मक लेख-संग्रह)

लेखक

राजकुमार जैन, द्रोणगिरि

प्रकाशक

समर्पण

18, आदिनाथ कॉलोनी, केशवनगर, उदयपुर (राज.)

मो. 91 9414103492

पापा का बचपन
(एक प्रेरणात्मक लघु-संस्मरणात्मक लेख-संग्रह)

लेखक : राजकुमार जैन, द्रोणगिरि

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण : 1000 प्रतियाँ [श्री आदिनाथ दि. जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव शाश्वतधाम, उदयपुर (दिनांक 2 से 7 दिसंबर 17) के अवसर पर]

द्वितीय संस्करण : 1000 प्रतियाँ [वात्सल्य दिवस (श्रावण शुक्ल पूर्णिमा, रक्षाबंधन पर्व, दिनांक 15 अगस्त 2019)]

प्राप्ति स्थान : 18, आदिनाथ कॉलोनी, केशवनगर, उदयपुर (राज.), मो. 91-9414103492

मूल्य : 25/-

मुद्रक : देशना (दिनेश) कम्प्यूटर्स
मालवीया इण्डस्ट्रियल एरिया, जयपुर
मो. 9928517346

PAPA KA BACHPAN
(A collection of inspirational & small-instincts articles)

Auther - Rajkumar Jain

price - 25/-

प्रकाशकीय

‘**समर्पण**’ का नये लेखकों के विचारों को आप सब तक पहुँचाना ही उद्देश्य है। अभी तक हमारे द्वारा 27 पुष्प प्रकाशित किये जा चुके हैं, जिन्हें पाठकों ने हृदय से सराहा है। यह प्रसन्नता का विषय है कि हमें पुस्तक प्रकाशन के पूर्व ही अर्थ सहयोग प्राप्त हो जाता है। अतः बाद में हम ‘**जो चाहो ले जाओ, जो चाहो दे जाओ**’ की भावना से पाठक को साहित्य उपलब्ध कराते हैं, इसमें जो राशि आती है, उसे अन्य प्रकाशन में आवश्यकतानुसार उपयोग करते हैं।

‘**समर्पण**’ का प्रस्तुत प्रकाशन राजकुमार, द्रोणगिरि द्वारा लिखित **पापा का बचपन** है।

पुस्तक सर्व सामान्य द्वारा पठनीय ही नहीं, स्वाध्याय से दूर रहने वाले सहृदय व्यक्तियों तक पहुँचाने योग्य भी है।

पुस्तक, प्रकाशन के पूर्व पण्डित अजितकुमारजी शास्त्री अलवर, पण्डित पीयूषकुमारजी शास्त्री जयपुर, श्री अजित जैन बड़ौदरा ने भलीभांति देखी है व उनके द्वारा दिये गये सुझावों का उपयोग भी किया गया है। सभी को उनके प्रयासों हेतु हार्दिक धन्यवाद।

पुस्तक के सुन्दर मुद्रण के लिए श्री दिनेश शास्त्री (देशना कम्प्यूटर्स) जयपुर, अर्थ सहयोग हेतु श्री अमित जैन परिवार सूरत एवं **श्रीराम-नंदिनी ग्रंथमाला** के संचालकों व अन्य साधर्मियों का भी आभार।

लेखन/मुद्रण में किसी भी प्रकार की त्रुटि हो तो कृपया हमें अवगत करायें, जिससे कि भविष्य में ध्यान रखा जा सके।

अब आपके हाथों में है - '**पापा का बचपन**'

निवेदक
समर्पण परिवार
मो. 9414103492

वीतराग दर्शन बिना,
धन-पद-यश सब व्यर्थ।
चुनकर विधर्मी हमसफर,
करते क्यों हो अनर्थ ?
जैनधर्म बिन स्वर्गसम,
भी यदि वैभव होय।
इन्द्र सरीखा वर मिले,
मत लो धर्म को खोय।।

अन्तर्मन

प्रिंस (अगम जैन, आई.पी.एस.) करीब 9–10 वर्ष की आयु का रहा होगा, तब उसके बड़े मामाजी श्री अशोक जैन रायपुर ने उसे रूसी लेखक द्वारा लिखित हिन्दी में अनुवादित पुस्तक **पापा जब बच्चे थे** पुस्तक पढ़ने को दी।

पुस्तक में एक पात्र अपने पापा के बचपन की मनोरंजक/रोमांचकारी घटनाओं को सुनाता है, जिसमें बाल मनोविज्ञान को प्रदर्शित किया गया है।

मैने भी पुस्तक के कुछ प्रसंग पढ़ें और तब से मस्तिष्क में यह बात थी कि अपनी बात को इस ढंग से भी पहुँचाया जा सकता है। जब मैं बांसवाड़ा पहुँचा और ध्रुवधाम पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया तब इस पुस्तक के 4–5 लेख – **पापा ने जब छड़ी चुराई, पापा ने कहा सोनगढ़ी भगवान नहीं बन सकते, पापा ने जब पानी छाना, पापा ने रात्रि भोजन छोड़ा** आदि। फिर अन्य कार्यों में लग गए, आलस्य भी कर गये।

जब 2015 से पुस्तक लेखन/प्रकाशन प्रारंभ हुआ, तब करीब 8 वर्ष बाद फिर से पापा जब बच्चे थे कि दिशा में सोच प्रारंभ हुई और जैनदर्शन के **शाश्वत सिद्धान्त** नयी पैकिंग में पैक कर बच्चों तक पहुँचाने के लिए यह पुस्तिका **पापा का बचपन** आपके हाथों में है।

यह पुस्तिका बालकों/पालकों तक पहुँचे और वह इससे कुछ शिक्षा ले सकें तो हमारा प्रयास सार्थक होगा।

लेखन में सैद्धान्तिक कोई त्रुटि हो तो प्रबुद्ध पाठकों से अनुरोध है कि अनुग्रह कर सूचित अवश्य कीजियेगा।

पुस्तिका प्रकाशन के पूर्व आदरणीय डॉ. सुदीपजी दिल्ली ने महत्त्वपूर्ण सुझाव व पुरोवाक् लिखकर दिया, एतदर्थ मैं उनका आभार व्यक्त करता हूँ। साथ ही सदा की भांति भाई अजित शास्त्री अलवर, डॉ. संजय जैन दौसा, पीयूष शास्त्री जयपुर ने भी सुझावों व प्रोत्साहन द्वारा पुस्तिका को आप तक पहुँचाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है तदर्थ उन्हें भी सस्नेह धन्यवाद।

– **राजकुमार,** द्रोणगिरि

मो. 9414103492

चाह नहीं है...

चाह नहीं है, सुख सुविधा में रहकर पाप कमाऊँ।
चाह नहीं है पुण्य कमाकर, स्वर्गादिक पद पा जाऊँ।।
चाह नहीं है धन-पद-यश पा, बीच सभी के इठलाऊँ।
चाह यही है जिनवचनों में रमकर, निज पद पा जाऊँ।।
चाह नहीं है प्रभु गुण गाकर, मैं गायक बन जाऊँ।
चाह नहीं है लिख-लिख कविता मैं कविवर कहलाऊँ।।
चाह नहीं है चलूँ भीड़ के आगे, नायक कहलाऊँ।
चाह यही है इस जीवन में, मैं बस ज्ञायक ही कहलाऊँ।।

पुरोवाक्

जैन-जीवनशैली और समसामयिक-सन्दर्भ

आज के भौतिकवादी-विकास के युग में पारम्परिक जैन-जीवनशैली एवं सिद्धांत चिन्तनीय इसलिए भी बन गये हैं कि आधुनिक युग की नई पीढ़ी पहले की अपेक्षाकृत बहुत तेजी से बदल रही है। न केवल उसकी जीवनशैली बदल रही है, अपितु उसकी प्राथमिकतायें भी नितान्त भिन्न व अकल्पितप्राय: होती जा रही हैं। - **आवाक-अवाक सही करना है।**

उदाहरण के रूप में हम मोबाइल संस्कृति को ही ले सकते हैं। हमारी पीढ़ी के पढ़े-लिखे लोग सीखकर भी इन्हें उतने अधिकारपूर्वक संचालित नहीं कर पाते हैं, जबकि हमारे नन्हे-मुन्ने बच्चे, जो अभी स्कूल-संस्कृति में भी नहीं पहुँचे होते हैं, हम ग्रेजुएट्स को बड़े अधिकारपूर्वक कहते हैं "क्या पापा ! आपको इतना भी नहीं आता है ? लाइये, इधर दीजिये, मैं कर देता हूँ" - ऐसा कहकर वे क्षणभर में उन्हें हमारी अपेक्षा के अनुरूप संचालित करके दे देते हैं और हम आवाक् रहकर उन्हें ताकते रह जाते हैं कि "इन्हें कहाँ यह जानकारी मिली ?" पर कोई उत्तर नहीं मिलता और हम नई पीढ़ी की खूबी कहकर चुप रह जाते हैं। वस्तुत: हमारे पास इस परिवर्तन का कोई उत्तर ही नहीं होता है क्योंकि हम अभिमन्यु की तरह यह भी नहीं कह पाते हैं कि

"इसने माँ के पेट में सुनकर सीख लिया होगा।" क्योंकि माँ और पिता – दोनों को ही वे जानकारियाँ हैं ही नहीं, जो वे नयी पीढ़ी के नौनिहाल शैशवावस्था में करके दिखा देते हैं।

लगभग यही स्थिति हमारे पारिवारिक व धार्मिक संस्कारों की भी है। हम अपने बचपन में अपने माता-पिता या बड़ों के सामने मुँह खोलने में डरते थे, जुबान लड़ाना तो कोई सोच भी नहीं सकता था, किन्तु अब स्थिति पूरी तरह भिन्न चुकी है। बच्चे हमसे पूछते नहीं, बताते हैं। संकोच जैसा शब्द उनके शब्दकोष से गायब है और शिष्टाचार के नाम पर बस यही सही है कि वे जो कहें, वह आप मानते जायें और अपनी बात बड़ी करते रहें। यदि ऐसा नहीं किया, तो अपने सम्मान के जिम्मेदार आप स्वयं होंगे।

धार्मिक संस्कारों की तो स्थिति और भी शोचनीय हो चुकी है। देवदर्शन से महत्त्वपूर्ण मैडम के समक्ष समय पर उपस्थिति हो चुकी है और घर के सात्त्विक भोजन के ऊपर ब्रांडेड फास्टफूड हावी हो चुके हैं। उन पर प्रश्नचिह्न लगाना स्वयं को प्रश्नचिह्नित करना हो गया है। यदि आपने कहने का साहस जुटा भी लिया, तो नई पीढ़ी के तर्क तीर आपको क्षणभर में ही निरुत्तर कर देंगे। यहाँ तक कि आपकी सर्वाधिक विश्वसनीय सहधर्मिणियाँ भी इन्हें मुद्दों पर आपका साथ नहीं देंगी। इन 'एडवांस' होती जा रहीं परिस्थितियों में पारम्परिक संस्कारों की अपेक्षा यक्षप्रश्न बन चुकी है।

नई पीढ़ी का यह वैशिष्ट्य हमारी पीढ़ियों के बदलावों से कई गुना तेज है व हतप्रभ कर देने वाला है और इन संदर्भों में हम जैन-जीवनशैली के पारम्परिक सिद्धान्तों की प्रासंगिकता सिद्ध करना चाहें, तो भी हमें विषय, शब्दावली, लेखनशैली व प्रस्तुतीकरण इतनी सावधानी से करना होगा कि यह पीढ़ी उसे न केवल सही रूप में समझ सके व इतनी प्रभावक-शैली में कहा जाये कि यह पीढ़ी उसे सहर्ष अपना सके और इसके लिए जितनी समझ जैन-तत्त्वज्ञान की अपेक्षित है, उतनी ही प्रतिभा शब्दावली के चयन की एवं प्रस्तुतीकरण की शैली की भी अनिवार्यतः अपेक्षित है।

समसामयिक-सन्दर्भों में नयी पीढ़ी को जितनी समझ विज्ञान और तकनीकी की है, उसके कारण हम पारम्परिक श्रद्धापरक तरीके से उसे अपनी बात नहीं समझा सकते हैं। उसे विज्ञान और तकनीकी से सम्मत तथ्यों को बताकर जैन-जीवनशैली की प्रामाणिकता के प्रति आश्वस्त करना होगा। साथ ही नयी पीढ़ी तर्क और युक्ति (लॉजिक) की भाषा समझती है।

परन्तु एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि यदि हिन्दी भाषा में यह समझाने का कार्य किया जाये, तो भाषा व शैली अत्यन्त सरल व संक्षिप्त ही होनी चाहिए।

इस संक्षिप्त-कृति के अध्ययन से यह बात सुस्पष्ट हो जाती है कि विद्वान्-लेखक ने सहज ही इन सब अपेक्षाओं की पूर्ति इसमें की है।

साथ ही उन्होंने वर्तमान–सन्दर्भ में जैन समाज में चल रही कई महत्त्वपूर्ण जिज्ञासाओं का भी प्रभावक–रीति से समाधान किया है। विशेषतः आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी के विषय में फैलायी गयी अफवाहों का जितना सटीक उत्तर उन्होंने दिया है, उतनी ही सरल व दोटूक–शैली में उनके चिन्तन एवं अवदान को भी रेखांकित किया है।

यद्यपि उनकी यह रचना मुख्यतः बच्चों को केन्द्रित करके बनी है, तथापि बड़ों को भी वह उतने ही प्रभावी तरीके से अपनी तथ्य संप्रेषित करने में सक्षम है। इसप्रकार सभी वर्गों के लिए इसकी महत्ता एवं उपादेयता सिद्ध होती है।

– **प्रो. सुदीपकुमार जैन**
नई दिल्ली

पिता, पुत्र को दे रहे, धन कमाऊ शिक्षाएं।
दर्शन–पूजन छोड़कर, धन ही लक्ष्य बनाएं।।

परिजन–पुरजन छोड़कर, जब विदेश भग जाएं।
मात–पिता रोते रहें, कलयुग दोष बताएं।।

मात–पिता संतान को, दें मोबाइल कार।
लौकिक बहु शिक्षायें दें, देते नहीं संस्कार।।

संस्कार जैनत्व के,सुत को देते नाहिं।
खाना–पीना, रात–दिन, फिरें होटलों माहिं।।

समर्पण चैरिटेबल ट्रस्ट
एक परिचय

देव-धर्म-गुरु के चरणों में तन-मन-धन सब अर्पण।
आतमहित व तत्त्वज्ञान को, है सर्वस्व समर्पण।।

ट्रस्ट का नाम - समर्पण चैरिटेबल ट्रस्ट
स्थापना तिथि - 20 सितम्बर 2014

ट्रस्ट मण्डल -

संरक्षक - 1. श्री अजित जैन बड़ौदा, 2. श्री कन्हैयालाल दलावत, 3. श्री ताराचन्द जैन उदयपुर, 4. श्री प्रकाशचन्द छाबड़ा सूरत, 5. श्री ललितकुमार किकावत लूणदा।

अध्यक्ष - राजकुमार शास्त्री उदयपुर, **उपाध्यक्ष** - अजितकुमार शास्त्री अलवर, **कोषाध्यक्ष** - रमेशचन्द वालावत उदयपुर, **मंत्री** - डॉ. ममता जैन उदयपुर, **सहमंत्री** - पीयूष शास्त्री जयपुर, **ट्रस्टी** - पण्डित अशोकुमार लुहाड़िया तीर्थधाम मंगलायतन अलीगढ़, ऋषभकुमार शास्त्री छिन्दवाड़ा, डॉ. महेश जैन भोपाल, रतनचन्द शास्त्री कोटा।

ट्रस्ट की सामान्य रूपरेखा

उद्देश्य - 1. तत्त्वज्ञान, अहिंसा, शाकाहार, सदाचार का प्रचार करना। 2. सामाजिक विकृतियों के विरुद्ध जागरुकता पैदा करना। 3. अनुपलब्ध, आवश्यक व नये लेखकों का श्रेष्ठ साहित्य प्रकाशित करना। 4. सर्वोपयोगी पत्रिका प्रकाशित करना। 5. चिकित्सा व शिक्षा के क्षेत्र में प्राप्त सहयोग को वितरित करना।

कार्य पद्धति - 1. सबसे सहयोग-सबको सहयोग की भावना से साधर्मियों से प्राप्त सहयोग साहित्य/चिकित्सा/शिक्षा पर आवश्यकतानुसार वितरित करना। हमारा प्रयास होगा कि फण्ड बनाने

की अपेक्षा प्रतिवर्ष प्राप्त सहयोग को उसी वर्ष वितरित कर दिया जाये। 2. व्यक्ति या संस्था के नाम के लिए नहीं, पर काम के लिए काम। 3. सर्वोपयोगी (अपनी समझ के अनुसार) योजना को सबके समक्ष रखना, यदि सहयोग प्राप्त हुआ हो तो उस योजना/कार्य को करना, नहीं तो..... ? 3. अच्छी बातें-सच्ची बातें (अर्थात् शाश्वत सत्य) ज्यादातर लोगों तक पहुँचे, ऐसा प्रयास करना।

गतिविधि - 1. साहित्य प्रकाशन, 2. **संस्कार सुधा** मासिक पत्रिका का प्रकाशन, 3. **स्नातकों द्वारा स्नातकों के लिए शिक्षा चिकित्सा सहायता योजना,** 4. साधर्मी वात्सल्य योजना - साधर्मियों से स्वैच्छिक सहयोग लेकर योग्य साधर्मियों को शिक्षा/चिकित्सा सहयोग पहुँचाना।

निवेदन - यह छोटी संस्था आपके सहयोग से समाज में कुछ कार्य करना चाहती है, यदि आप हमारे विचारों से सहमत हों, तो आप भी आर्थिक सहयोग प्रदान कर या अपनी सहमति देकर हमारा उत्साहवर्धन कर सकते हैं।

हमारा उद्देश्य कुछ अलग ढंग से समाज में जागरूकता लाना व सहयोग करना है। आपके सुझाव व सहयोग सदैव अपेक्षित हैं। आप जब, जो, जैसे कर सकते हैं, आत्महित व समाजहित में जरूर कीजिए। बस यही अनुरोध है।

निवेदक

समस्त ट्रस्ट मण्डल, समर्पण चेरीटेबल ट्रस्ट,

उदयपुर (राजस्थान)

नोट - आप अपनी सहयोग राशि '**समर्पण चेरीटेबल ट्रस्ट**' के नाम से, पंजाब नेशनल बैंक, पंचशील मार्ग, उदयपुर के खाता क्रमांक 0458000100404840 में जमा करा सकते हैं।

IFSC Code - PUNB 0045800

सप्रेम भेंट

चि. अगम जैन (प्रिंस)

एवं

विपाशा जैन (गुड़िया)

को

जिनके

बचपन को

देखकर

'पापा का बचपन'

लिखने का

मन हुआ।

विषयानुक्रमणिका

क्र. विषय	पृष्ठ
1. पापा ने रात्रि भोजन छोड़ा	17
2. पापा ने जब सरकस सीखा	22
3. पापा ने कहा सोनगढ़ी भगवान नहीं बन सकते	26
4. पापा ने जब पानी छाना	30
5. पापा ने जब उपवास किया	34
6. पापा ने मंदिर जाना सीखा	38
7. पापा ने जादू की लकड़ी चुराई	42
8. पापा ने सीखा निश्चय-व्यवहार	48
9. पापा ने सीखा निमित्त-उपादान	61
10. पापा ने पटाखे फोड़ना छोड़ा	74
11. पापा ने समझी जीव-अजीव की भिन्नता	80
12. पापा ने समझा दिया कर्ता-कर्म	86
13. पापा को समझ आई प्रतिमा की आवश्यकता	91
14. पापा ने सीखा आतिथ्य	98
15. पापा ने सीखा दादा-दादी की सेवा करना	104

प्रस्तुत प्रकाशन में सहयोग करने वाले महानुभाव

1. श्री मणिलाल कारिया परिवार, मुम्बई	5000/-
2. श्री सिद्धार्थकुमार दोसी, रतलाम	2100/-
3. श्री कमलेशकुमार शास्त्री, टीकमगढ़	1100/-
4. श्री विद्या-सागर जैन, उदयपुर	1100/-
5. श्री नेमिचन्द चंपालाल भोरावत चेरीटेबल ट्रस्ट, उदयपुर	1100/-
6. श्री मुकेशकुमार जैन (बड़ोदिया), उदयपुर	1000/-

1

पापा ने रात्रि भोजन छोड़ा

घर में कभी भी, कहीं से, किसी का निमंत्रण आता, उसमें जाने को पापा (जब बच्चे थे) सबसे पहले तैयार हो जाते। चाहे स्कूल में पढ़ाई चल रही हो या परीक्षायें नजदीक हों, पर पापा को इससे क्या ? उन्हें तो निमंत्रण में जाना ही है, क्योंकि वहाँ खाने को मिठाई, आइसक्रीम और खेलने को दोस्त मिलते हैं, धमाचौकड़ी करने का मौका मिलता है, नये कपड़े पहनने को मिलते हैं, बच्चों को इससे अधिक और क्या चाहिए। किसी की भी शादी हो, बारात कहीं से भी आवे, दहेज में कुछ भी मिले न मिले, उससे उन्हें क्या ? बस निमंत्रण में जाने से मतलब।

एक दिन पड़ौस से शर्माजी के यहाँ से निमंत्रण आया। उनकी बेटी की शादी थी। निमंत्रण-पत्र में भोजन समय लिखा हुआ था, शाम 7 बजे से आपके पधारने तक (अब तो जैनों के निमंत्रण-पत्र में भी यह लिखा हुआ आता है तो पढ़कर बड़ा आश्चर्य होता है)। शर्माजी पापा के पापा के

पक्के मित्र थे। इसलिए उन्हें सहयोग करने जाना जरूरी था, पर वह रात्रि भोजन नहीं करते थे इसलिए घर पर ही भोजन करके, फिर वहाँ जाने लगे।

मेरे पापा ने अपने पापा से पूछा – "पापा आप तो निमंत्रण में जा रहे हैं, फिर आपने घर पर ही भोजन क्यों कर लिया ?"

मेरे दादाजी ने पापा को समझाया – "बेटा ! हम जैन हैं, जैन रात को भोजन नहीं करते। निमंत्रण में तो भोजन रात्रि में है।"

पापा ने पूछा – पापाजी हम रात में भोजन क्यों नहीं करते ?

दादाजी ने कहा – "बेटा ! रात्रि में अनंत जीव उत्पन्न होते हैं, जो आग या बिजली देखकर उस पर आ जाते हैं और जलकर मर जाते हैं, वहाँ रखे भोजन में भी वे जीव गिर जाते हैं और भोजन के साथ वे हमारे पेट में पहुँच जाते हैं, जिससे पाप का बंध होता है और स्वास्थ्य भी खराब हो जाता है, इसलिए हम रात में भोजन नहीं करते।"

पापा ने यह सब सुना तो, पर उनका बाल मन शादी में जाने व वहाँ की मिठाइयाँ खाने के लिए हिलोरें मार रहा था।

उन्होंने अपने पापा से कहा – ''पापा मैं भी आपके साथ चलूँगा, मैं भी अंकलजी के यहाँ शादी में सहयोग करूँगा। मैं प्रॉमिस करता हूँ, मैं वहाँ रात्रि में भोजन नहीं करूँगा।'' (पापा ने शादी में जाने के लिए झूठा प्रॉमिस कर दिया।)

दादाजी ने कहा कि ''बेटा ! यदि तुम रात्रि में भोजन नहीं करने का वचन दे रहे हो तो चलो।'' उनके इतना कहते ही पापा उछलते हुए शादी में जाने के लिए तैयार होकर चल पड़े।

दादाजी तो वहाँ पहुँचते ही काम में लग गये और मेरे छोटे से पापा की नाक में जब व्यंजनों की खुशबू आई और लोगों को प्लेट लेकर तरह–तरह का भोजन करते हुए देखा तो उनका मन भी खाने को मचल उठा। भूख भी लग ही रही थी। उन्होंने दादाजी से बचते हुए प्लेट उठाई और स्टॉलों की तरफ दौड़ लगा दी।

पर जब वे वहाँ पहुँचे और देखा कि दाल–सब्जी के स्टॉल के ऊपर ही हैलोजन लगी हुई है, हजारों कीड़े उस पर आकर जल रहे हैं, अनेकों छोटे–छोटे कीड़े उसी दाल में गिर रहे हैं, परोसने वाले चम्मच से कुछ कीड़ों को निकाल रहे हैं और जिन्हें नहीं निकाल पा रहे वे दाल–सब्जी की मात्रा व स्वाद

बढ़ा रहे हैं। यह देखकर उनकी हिम्मत वहाँ से दाल–सब्जी लेने की नहीं पड़ी।

जब वे गुलाबजामुन की कड़ाही के पास गये तो देखा कि वहाँ पर भी हजारों कीड़े उड़ रहे थे, उनमें से कुछ कड़ाही में भी गिर रहे हैं और चासनी में मिलकर खुद चासनी बनते जा रहे हैं, यह सब देखकर उन्हें दादाजी की बातें याद आ गईं और भूखे होते हुए भी उन्होंने भोजन नहीं करने का मन बना लिया। और इतना ही नहीं उन्होंने संकल्प किया कि अरे !

जिस भोजन के बनाने, करने, कराने में इतने जीवों की हिंसा हो रही है, फिर भी लोग भोजन कर रहे हैं, इनके मन में जरा भी दया नहीं है, इनका भोजन के प्रति कितना तीव्र राग है। जिसमें इतनी हिंसा होती है – ऐसा रात्रि भोजन मैं अब कभी नहीं करूँगा।

यह विचार आते ही पापा का मन खुशी से भर गया कि उन्होंने जैनत्व का एक लक्षण ग्रहण किया।

प्रातः पता चला कि शर्माजी के यहाँ भोजन के लिए आये हुए अनेक लोग बीमार हो गये हैं और अस्पताल में भर्ती हैं। यह सुनकर तो मेरे छोटे से पापा को जैन होने व अहिंसक जैनाचार पालन करने पर गर्व होने लगा। ❍

सत्संगति...

सत् स्वभाव के संग में रहना, निश्चय से सत्संग कहा।
जो जन सत् का आश्रय लेते, उनका संग व्यवहार अहा।।
सत् स्वभाव की चर्चा करने, वालों के संग में रहना।
है सत्संग उपचरित भाई! यथायोग्य संगति करना।।
सत् संगति से ही यश वैभव, अरु सुख शांति मिलती है।
सत्संगति करती है उपकृत, सब दोषों को हरती है।।

2

पापा ने जब सरकस सीखा

सुनो विपाशा एक बार बड़ा मजा आया। जब मेरे पापा 10-11 वर्ष के थे, तब वह दादाजी के साथ सरकस देखने गये। उन्होंने सरकस में देखा कि एक आदमी हंटर लिये हुए 8-10 भयंकर शेरों से कह रहा है कि 'सिट डाउन' 'बैठ जाओ' वे उसके कहने पर बैठ जाते हैं। 'खड़े हो जाओ' कहने पर वे खड़े हो जाते हैं। 'पैर ऊपर करो' वे पैर ऊपर कर लेते हैं।

वे जंगल के राजा, उसकी एक आवाज और आँख के इशारे पर नाच रहे हैं। हमारे छोटे से पापा भय एवं आश्चर्य से आँख-मुँह फाड़े यह सब चुपचाप देख रहे थे। पापा ने दादाजी से पूछा - "ये जंगल के राजा, एक आदमी की तरह उसकी सब बातें कैसे मान रहे हैं ? इस रिंग मास्टर को डर नहीं लगता।"

दादाजी ने कहा - "बेटा इसने इसे बचपन से सिखाया है। वे अपने मास्टर की आंख-हाथ के इशारे को समझते हैं। देख लो बेटा समझाया जाए तो एक जानवर भी सीख सकता है।"

पापा ने कहा – ''पापाजी यह तो बड़े हिम्मत का काम है।'' और मन ही मन सोचने लगे कि मुझे भी कुछ ऐसे ही हिम्मत का काम करना चाहिए।

दूसरे दिन सुबह दादीजी के साथ पापा बगीचे में घूमने गये। वे दादीजी के साथ एक बैंच पर बैठे थे कि उन्होंने सामने वाली बैंच के नीचे एक कुत्ते का पिल्ला बैठा हुआ देखा। छोटे से पापा के दिमाग में उनके पापा के द्वारा बताई

बात घूम रही थी कि सिखाने से कोई भी सीख सकता है। उन्होंने सोचा शेर तो पता नहीं कब मिलेगा ? पहले इस पिल्ले को ही सिखाता हूँ।

उन्होंने एक छोटी सी लकड़ी ली एवं कुत्ते की आंखों में देखकर अपनी ओर आने का इशारा करने लगे, पर पिल्ले ने तो करवट बदल ली वह हिला ही नहीं।

पापा ने सोचा पिल्ला अभी आंख का इशारा समझ नहीं पा रहा। वे उसके पास जाकर उसकी आंखों में घूरने लगे, फिर भी वह नहीं हिला तब तो सोचने लगे कि क्या बात है यह तो मेरा इशारा समझ ही नहीं रहा, तब उन्हें याद आया कि जब कभी वे शेर भी रिंग मास्टर के इशारे को नहीं समझते थे वह हाथ की छड़ी (हंटर) उसे मार देता था तब वे शेर उसकी बात मान लेते थे। यह याद आते ही पापा ने भी अपने हाथ की लकड़ी पिल्ले के पैर में दे मारी।

लकड़ी लगते ही उस पिल्ले को गुस्सा आया और उछल कर पापा का पैर पकड़ लिया। पापा जोर से चिल्लाने लगे। दादी ने देखा अरे पापा को कुत्ते ने काट लिया है। वे दौड़ी-दौड़ी आईं और उसके चंगुल से छुड़ाया। पर तब तक पिल्ले ने काट ही लिया था। बाद में पापा के पेट में बड़े-बड़े इंजेक्शन भी लगे।

सबने आकर पापा से पूछा ''तुम कुत्ते के पास क्या कर रहे थे ?''

पापा ने बड़ी ही मासूमियत से कहा – ''मैं तो कुत्ते को सरकस जैसे करतब करना सिखा रहा था।''

यह सुनकर सब हंसने लगे। दादाजी ने समझाया – ''बेटा सरकस या टी.वी. में दिखाये जाने वाले करतब देखने, मनोरंजन करने के लिए होते हैं। उनकी नकल नहीं करना चाहिए क्योंकि वे सब तो ये करतब करते हुए बहुत सावधानी रखते हैं, उनके पास सब साधन हैं और महीनों का अभ्यास है। इसलिए दुर्घटना नहीं घटती। अब कभी भी ऐसी नकल नहीं करना।''

पापा ने चुपचाप नकल न करने की कसम खा ली। ❍

पापों से जो हमें बचावे,
सुख दुःख में जो साथ रहे।
हो हितकारी, लगे न प्यारी,
तो भी ऐसी बात कहे।।
हो विश्वास अटूट जहाँ पर,
इक दूजे का कष्ट सहे।
है सद्भागी वह प्राणी जो,
ऐसे सन्मित्रों के मध्य रहे।।

3

पापा ने कहा सोनगढ़ी भगवान नहीं बन सकते

मेरे पापा जब 12–13 वर्ष के थे, तब वह एक बार अपने पापा के साथ लेटे–लेटे बातें कर रहे थे। उन्होंने अपने पापा से पूछा ''पापाजी! जो मुनि महाराज को नहीं माने वह जैन हो सकता है?''

दादाजी ने कहा 'नहीं, गुरुओं को नहीं माननेवाला जैन नहीं हो सकता।''

तब पापा ने पूछा – ''पापाजी ! क्या कोई मुनि बने बिना भगवान बन सकता है ?'

दादाजी ने कहा ''नहीं ! भगवान बनने से पहले मुनि दीक्षा लेते ही हैं।''

यह सुनकर हमारे छोटे से पापा बड़ी गंभीरता से बोले ''फिर तो पापा सोनगढ़ी जैन नहीं हैं और वे भगवान भी नहीं बन सकते।''

दादाजी ने हंसते हुए पूछा 'अरे बेटा ! ये सोनगढ़ी कौन है? और वे भगवान क्यों नहीं बन सकते?'

पापा ने उसी गम्भीरता व भोलेपन से कहा "ये सोनगढ़ी कौन है, मैं क्या जानूँ ? शायद किसी अंकल का नाम होगा। पर कल जब दादीजी (मेरी परदादी) पड़ौसवाली दादीजी से बात कर रही थीं तो कह रही थीं कि कोई कानजीस्वामी हैं, उनके भगत सोनगढ़ी हैं, वे मुनिराज को नहीं मानते। तो पापा जब वे मुनिराज को नहीं मानते तो फिर वो जैन कैसे हो सकते हैं और वे भगवान भी कैसे बन सकते हैं ? क्योंकि अभी-अभी आपने ही बताया है कि जो मुनिराज को नहीं माने वो जैन भी नहीं और वह भगवान भी नहीं बन सकता।"

दादाजी की समझ में आ गया कि हमारे छोटे से पापा के मन में यह प्रश्न कैसे घुस गया था। साथ ही अपने छोटे से बच्चे की तार्किक बुद्धि देखकर प्रसन्न भी हुए। उन्होंने उन्हें समझाते हुए कहा -

"देखो बेटा सोनगढ़ी किसी अंकल का नाम नहीं है। श्रीकानजीस्वामी नाम के एक महापुरुष रहते हैं, जिन्होंने जैन शास्त्रों का गहन अभ्यास करके गूढ़ रहस्य समझाया, जैसे प्रत्येक आत्मा पर का अकर्ता है, मात्र ज्ञायक है। धर्म दो प्रकार से समझाया जाता है, परन्तु निश्चय धर्म ही वास्तविक

धर्म है, ऐसा बताया। देव–शास्त्र–गुरु का परमार्थ स्वरूप बताया। उनके उपदेश से प्रभावित होकर जिन्होंने शास्त्र–स्वाध्याय किया, अपने सुख–दुःख का कारण स्वयं को माना, दूसरे को या कर्म को नहीं, सच्चे देव–शास्त्र–गुरु का स्वरूप समझ कर उन्हें ही पूज्य माना, आत्मानुभूति ही सम्यग्दर्शन है, सम्यग्दर्शन होने पर ही चारित्र होता है, प्रत्येक कार्य क्रमबद्ध ही होता है, इन सिद्धांतों को स्वीकार किया, उनको लोग सोनगढ़ी कहने लगे क्योंकि श्री कानजी स्वामी गुजरात के भावनगर जिले के छोटे से गाँव सोनगढ़ में रहते हैं।''

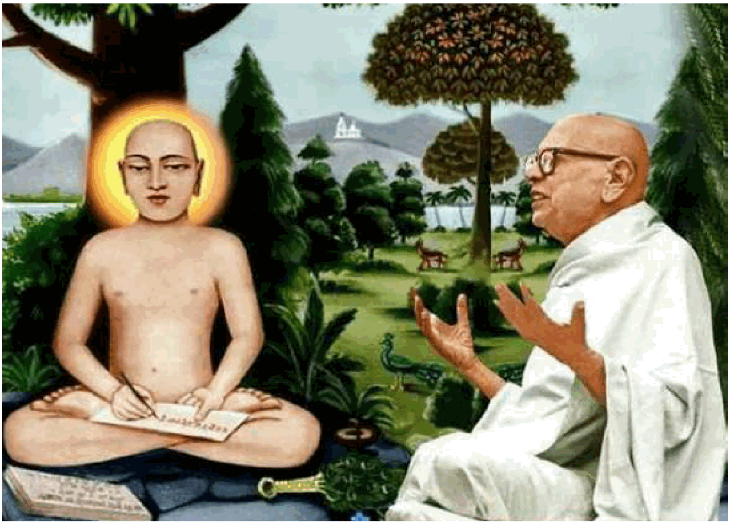

दादाजी की बात सुनकर पापा बोले "पर पापा ये सभी तो सच्चे जैन हुए, तो फिर दादी ऐसा क्यों कह रही थीं कि वे जैन नहीं हैं, मुनि को नहीं मानते।"

"देखो बेटा ! जिन लोगों को स्वाध्याय प्रिय नहीं है या आलस्यवश या बुद्धि की कम से समझते नहीं हैं, वे ऐसा भ्रम फैलाते हैं। सच तो यह है कि वे जैन तो हैं ही एवं मुनिराज को भी मानते ही हैं। श्रीकानजीस्वामी तो कहा करते हैं कि हम तो मुनिराजों के दासानुदास हैं।' वे तो स्वयं नग्न दिगम्बर मुनि बनने की भावना भाते थे, प्रवचनों में अनेकों बार मुनिराजों का भक्तिभाव पूर्वक स्मरण करते थे। **मुनिराज तो केवलज्ञान की तलहटी में बैठे हुए हैं और मुनिराज तो चलते-फिरते सिद्ध हैं** - ऐसा कहकर उनके प्रति बहुत आदर करते थे। इसलिए बेटा यह तो कुछ लोगों द्वारा फैलाया गया भ्रम है कि वे जैन नहीं हैं या मुनि को नहीं मानते। तुम भी बड़े होकर स्वाध्याय करोगे तो सब समझ जाओगे।"

दादाजी ने जब विस्तार से ऐसा समझाया तो छोटे से पापा को भी समझ में आया और आराम की नींद सो गये। सही ही है, सत्य समझे बिना आराम कहाँ ?

❍

4

पापा ने जब पानी छाना

मेरे छोटे से पापा को उनकी मम्मी (मेरी दादी) संकल्प कविता सुना रही थी। सम्यग्दर्शन प्राप्त करेंगे....बिना छना जल काम न लेंगे, रात्रि भोजन नहीं करेंगे। पापा ने यह सब चाव से सुना और याद भी कर लिया।

पापा की यह आदत थी कि जो भी सुनते, सीखते उसका प्रयोग करके जरूर देखते थे। जब उन्होंने यह सुना कि बिना छल जल काम न लेंगे तो अपनी मम्मी से बोले "मम्मी-मम्मी अब मैं आज से खुद छानकर ही पानी पीऊँगा और दूसरे काम में भी छना पानी ही काम में लूँगा।"

दादी ने कहा "बहुत अच्छा बेटा पानी हमेशा छानकर ही पीना चाहिए, क्योंकि उसमें असंख्य सूक्ष्म जीव होते हैं, बिना छने पानी का प्रयोग करने से उनकी हिंसा का पाप लगता है, साथ ही स्वास्थ्य भी बिगड़ता है।"

इतना कहकर दादी तो रसोईघर में काम करने लगीं। पापा खेलने चले गये।

पापा खेलकर दौड़ते–दौड़ते घर में घुसे और बोले 'मम्मी मुझे बड़ी जोर की प्यास लगी है।'

दादी ने कहा – "बेटा ! अभी पानी छानकर देती हूँ।"

पापा ने कहा – "नहीं मम्मी आज मैं ही पानी छानूँगा।" ऐसा कहकर पापा ने फटाफट दूध छानने की प्लास्टिक की छन्नी उठाई, जग पर रखी और लोटे में पानी लेकर छानने लगे।

दादीजी की नजर उनके इस काम पर पड़ी तो वह चिल्लाकर बोलीं – 'नहीं बेटा ! ऐसे पानी नहीं छानते।' पापा ने आश्चर्य से कहा 'क्यों माँ, दूध भी तो इसी से छानते हैं ?''

दादी ने कहा – 'बेटा ! पानी छानने के लिए दुहरा, सफेद, मोटा कपड़ा काम में लिया जाता है। देखो वह रहा पानी छानने का छन्ना (गलना)।

देखो बेटा पानी छानने के लिए हमेशा साफ-सुथरा, बिना फटा, मोटा कपड़ा ही काम में लेना चाहिए और इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि जिस बर्तन में पानी छानना है, उसके मुँह से लगभग तीन गुना कपड़ा होना चाहिए, जिससे कि उस पर रखते हुए बिना छना पानी अन्दर न चला जावे।''

पापा बोले – ''मम्मी आपने यह पानी छानने की विधि किससे सीखी ?''

दादी प्यार से समझाते हुए बोलीं – ''मेरी जन्म देने वाली माँ और जिनवाणी माँ ने यह विधि सिखाई है।''

''मम्मी पानी छानते समय क्या और कुछ भी ध्यान रखना चाहिए ?''

''हाँ बेटा ! एक बात और ध्यान रखना चाहिए कि छन्ने के जिस ओर से हमने पानी छाना है, उस तरफ छन्ने पर छना हुआ पानी डालकर जीवानी डालनी चाहिए। संभव हो तो जहाँ का पानी हो वहाँ ही जीवानी डालनी चाहिए, नहीं तो जहाँ पानी भरा हो या पानी बह रहा हो, उसमें जीवानी डालनी चाहिए, और जहाँ पर साबुन का पानी बह रहा हो, ऐसे स्थान पर भी जीवानी नहीं डालना चाहिए, जिससे जीवों की हिंसा न हो।

और बेटा इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि पानी छानने के 48 मिनिट बाद उस पानी में फिर से जीवों की उत्पत्ति हो जाती है। इसलिए हमें जब भी पानी काम में लेना हो यथासंभव उसी समय पानी छानना चाहिए।''

पापा ने यह सब बड़े ध्यान से सुना था, अतः उन्होंने तुरन्त ही दादी से छन्ना लेकर जग में पानी छाना और जीवानी डाली। दादी ने पापा के इस कार्य की प्रशंसा की।

पापा ने छना हुआ ठंडा पानी पीकर एवं पानी छानने की विधि सीखकर शारीरिक व मानसिक शान्ति का अनुभव किया। ❍

5

पापा ने जब उपवास किया

दशलाक्षणी पर्व चल रहा था। कोई पूजा–पाठ कर रहा था तो कोई स्वाध्याय तो कोई एकाशन। सबसे बड़ी धूम थी उपवास करने वालों की। गाँव में 5–6 भाई–बहिनों ने तो 10 उपवास किये थे। जो देखो वह उनकी ही चर्चा कर रहा था। उनकी ही महिमा सुना रहा था।

यह देखकर मेरे छोटे से पापा के मन में भी आया कि मैं भी उपवास करूँ, मेरा भी नाम होगा। मुझसे भी सब मिलने आयेंगे। मेरे भी चर्चे होंगे। उन्होंने अपनी मम्मी से कहा ''मम्मी कल अष्टमी है, मैं भी कल का उपवास करूँगा।''

दादी ने समझाया – ''नहीं बेटा ! उपवास करना आसान नहीं है, इस तरह उपवास नहीं होता, तुम अभी उपवास नहीं पहले स्वाध्याय करो।''

पर पापा तो जिद पर अड़ गये, क्योंकि उन्हें पता था कि उपवास वालों के ही चर्चे हो रहे हैं, स्वाध्याय करने वालों को

तो कोई पूछ ही नहीं रहा, उल्टा उन्हें आलसी और किताबी कीड़ा ही कहा जा रहा है। इसलिए वह दादी से बोले "नहीं मैं तो उपवास ही करूँगा।"

दादी ने कहा कि "जो तेरी मर्जी वो कर।"

अगले दिन मंदिर में पूजन–स्वाध्याय आदि में ही 11 बज गये। फिर पापा एक दो घण्टे इधर–उधर घूमे। अब तो उन्हें भूख लगने लगी पर क्या करें। उन्होंने ही जिद करके उपवास करने का निर्णय किया है। इज्जत का सवाल है उपवास तो करना ही है। घर आकर टी.वी. खोलकर 2 घण्टे का और

समय बिताया। अब तो पेट में चूहे कूदने लगे। टी.वी. में भी मन नहीं लग रहा था। पापा मम्मी के पास आकर बोले ''मम्मी एक बात पूँछूँ ?''

मम्मी ने कहा – ''पूछो।''

''मम्मी ! महाराजजी जब उपवास करते हैं तो उनका समय कैसे बीतता होगा ? वो तो टी.वी. भी नहीं देखते, गप्पे भी नहीं करते, फिर दिन भर क्या करते होंगे ?''

मेरी दादी मेरे छोटे से पापा के मन की बात समझ रही थीं, वह बोली ''क्यों भूख लगी है क्या ?''

पापा ने अहंकार से कहा – ''नहीं–नहीं मैं तो ऐसे ही पूछ रहा था।''

तब दादी ने उन्हें बताया कि – ''बेटा मात्र भोजन का त्याग करना उपवास नहीं है।''

''तो फिर उपवास क्या है ?''

बेटा हमारे आचार्यदेव ने उपवास का स्वरूप रत्नकरण्ड श्रावकाचार में इसप्रकार बताया है –

कषाय–विषयाहारो त्यागो यत्र विधीयते।
उपवासो सः विज्ञेयः शेषं लंघनकं विदुः ।।

"बेटा जब क्रोध, मान, माया, लोभ कषाय, विषय माने टी.वी. देखना, पंखा-कूलर आदि की हवा एवं आहार का त्याग किया जाता है एवं आत्मा के समीप वास किया जाता है, तब सच्चा उपवास होता है। विषय के अभाव व निजानंद के जोर से मुनिराज को आहार का स्मरण भी नहीं आता, उनका समय तो समय अर्थात् आत्मा के अनुभव में ही बीतता है।"

पापा कुछ सोचते हुए बोले - "मम्मी मैंने तो विषय-कषाय छोड़े ही नहीं, मैं तो तुम्हें सच बता रहा हूँ कि 4 घण्टे से भूख से परेशान हूँ। अब मेरा उपवास होगा कि नहीं?"

मम्मी ने कहा - "बेटा ! अभी तुम पहले धर्म का सही मर्म समझो, फिर उपवास तो स्वयं ही हो जायेगा। भूख लग रही है तो शान्ति से भोजन कर लो। नहीं तो फिर रात हो जायेगी। रात को मैं भोजन नहीं दूँगी और तुम भोजन के बारे में ही सोचते रहोगे, जिससे और अधिक पाप लगेगा। भजन-भक्ति, स्वाध्याय छूटेगा वह अलग।"

पापा की समझ में कुछ आया, उन्होंने सोचा अपनी इज्जत इसी में है कि शाम को शुद्ध भोजन कर लिया जावे और प्रवचन में उपवास के सही स्वरूप को समझा जाये। ❍

6

पापा ने मंदिर जाना सीखा

''अरे अगम ! मैं तुम्हें एक बात बताऊँ।

''क्या ?'' अगम ने टी.वी. देखते हुए कहा

''जब मेरे पापा 13-14 वर्ष के थे तो किसी की बात नहीं मानते थे और सुबह होते ही टी.वी. देखने लग जाते फिर फटाफट तैयार होकर भागते-भागते स्कूल चले जाते और जब शाम को आते तो कभी कार्टून चैनल देखते, कभी क्रिकेट का मैच तो कभी पिक्चर। उन्होंने अनेक खिलाड़ियों और अभिनेताओं के नाम, उनकी जन्मतिथि, शादी की वर्षगांठ आदि की तारीखें सब याद कर रखी थीं।''

''तो क्या हुआ ?'' उत्साहित होकर अगम ने पूछा।

''अरे हुआ क्या ? उनकी दादी उन्हें बहुत समझाती कि बेटा तू न तो सुबह मंदिर जाता है, न शाम को यह अच्छी बात नहीं है।''

''फिर क्या हुआ ?''

एक दिन सौभाग्य से एक पण्डितजी को हमारे यहाँ

भोजन करने के लिए आमंत्रित किया गया। दादी (मेरी परदादी) ने पापा की शिकायत पण्डितजी से की। उन्होंने कहा ''कोई बात नहीं, मैं उसे समझाऊँगा।''

खेलते-खेलते पापाजी पण्डितजी के चक्कर में फँस गये।

''फिर क्या हुआ ?'' अगम ने पूछा।

पण्डितजी ने मेरे छोटे से पापा से पूछा - ''पप्पू ! तुम टी.वी. पर ये खिलाड़ी और एक्टर ही क्यों देखते रहते हो ?''

पापा ने कहा - ''पण्डितजी मैं उन जैसा बनना चाहता

हूँ। मैं भी वैसा ही खिलाड़ी बनना चाहता हूँ, नाम और पैसा कमाना चाहता हूँ।''

''अच्छा तो तुम खिलाड़ी बनोगे। ठीक है, पर बताओ कि तुम दुनिया में सबसे सुखी, शान्त व शक्तिमान किसे मानते हो ?''

पापा ने कहा – ''भगवान को।''

''तो क्या तुम भगवान जैसा बनना चाहोगे ?''

पापा ने बहुत सोच–समझकर कहा – ''हाँ–हाँ क्यों नहीं, मैं भगवान बनना चाहूँगा।''

पण्डितजी ने पापा से पूछा – ''तुम कभी भगवान के दर्शन करते हो ?''

पापा ने अहंकार से कहा –''नहीं। मैं तो कभी मंदिर नहीं जाता। वहाँ जाने से समय की ही बरबादी होती है।''

''अरे भाई ! ऐसा नहीं कहते। जब तुम खिलाड़ी बनना चाहते हो तो उनका मैच देखते हो, उनकी जन्म, तारीख याद रखते हो, पर भगवान बनना चाहते हो और भगवान के दर्शन नहीं करते हो। जब तुम भगवान को देखोगे ही नहीं कि वे कैसे होते हैं ? उनके कैसे और कितने गुण होते हैं ? उनकी मुद्रा कैसी है ? वो क्या करते हैं ? कैसे बैठते हैं ? किसका

ध्यान करते हैं ? यह सब नहीं जानोगे तो उन जैसा कैसे बन पाओगे ?''

पापा ने गम्भीरता से कहा – ''हाँ ! यह बात तो सही है।''

तब पण्डितजी ने प्रेम से समझाते हुए मेरे भोले-भाले पापा से कहा कि यदि तुम भगवान जैसा बनना चाहते हो तो प्रतिदिन भगवान के दर्शन करो, उनके स्वरूप का विचार करो तभी तुममें भी वैसे गुण प्रगट हो सकेंगे।''

पापा पण्डितजी से देवदर्शन की आवश्यकता समझ चुके थे और अब वह प्रतिदिन नहा-धोकर सर्वप्रथम जिनदर्शन करने लगे।

अरे वाह ! क्या जोरदार व मजेदार घटना सुनाई। पण्डितजी बोले – अच्छा अब तो मैं घर चलता हूँ। जयजिनेन्द्र। ❍

ज्ञानी जन यों कहते हैं...

आग लगाकर शीतलता की चाह व्यर्थ ही होती है।
राग आग में जो जलता है, उसे मुक्ति नहीं होती है।।
निज निवास में रहने पर ही, मिलता है हमको आराम।
त्यों ही निज में वास करे, जब चेतन पाता है विश्राम।।
पर प्रदत्त सुख भी दुख ही है, सभी विज्ञ जन कहते हैं।
विषयज संयोगज सुख दुःख है, ज्ञानी जन यों कहते हैं।।

7

पापा ने जादू की लकड़ी चुराई

लगभग 50 वर्ष पुरानी बात है। मेरे दादाजी को स्वाध्याय की बहुत रुचि थी। गाँव में मंदिरजी में नियमित स्वाध्याय कक्षा नहीं चलती थी, अतः पिताजी घर पर ही स्वाध्याय करते थे और जब भी सोनगढ़ में शिविर लगता तो वहाँ भी जाया करते थे। मेरे पिताजी भी, जब वह 10-11 वर्ष के ही थे अपने पिताजी के साथ वह भी सोनगढ़ जाते व गुरुदेवश्री का प्रवचन सुनते। वह उस समय समझते तो कुछ नहीं थे, पर 'समझ में आया' 'भगवान आत्मा', ''आ हा हा हा' आदि शब्द ही उनके समझ में आते थे और उन्हें याद भी हो गये थे।

गाँव में कई लोग मेरे दादाजी को 'यह तो सोनगढ़ी हैं' ऐसा कहकर मजाक भी किया करते थे। मेरे पापा को भी सब छोटे कानजीस्वामी कहकर चिढ़ाया करते थे। पर आपस में व्यवहार सबका अच्छा था। हमारे दादाजी की आर्थिक परिस्थिति पहले अच्छी नहीं थी, परन्तु संयोगवश पुण्योदय होने से स्वाध्याय के साथ-साथ व्यापार भी अच्छा चलने लगा था।

उस समय पूरे देश में स्वाध्याय की कमी और गुरुदेव का गुजराती व स्थानकवासी सम्प्रदाय से आये हुए होने के कारण, हिन्दी प्रान्त में बहुत विरोध होता था व मनगढ़न्त कपोल कल्पनाओं के आधार पर चर्चायें चला करती थीं। हमारा गाँव भी इस बात से अछूता नहीं रहा। दशलक्षण पर्व पर एक विद्वान प्रवचन करने आये हुए थे। मेरे दादाजी के साथ मेरे छोटे से पापा भी प्रवचन सुनने जरूर जाते थे। एक दिन पण्डितजी मुमुक्षुओं का विरोध करने की भावना से बोलने लगे 'अरे ! इन सोनगढ़ियों को तो सोनगढ़ से बहुत पैसा मिलता है, आप लोग इनके चक्कर में नहीं आना।'

साथ ही उन्होंने कहा – 'कानजी स्वामी के पास एक जादू की लकड़ी है, वह प्रवचन में जिस पर घुमा देते हैं, वह उनके वश में हो जाता है और मालामाल हो जाता है।'

गाँव वाले हमारे दादाजी की आर्थिक परिस्थिति देखकर उस बात को सही भी मानने लगे।

यह प्रवचन सुनकर हमारे छोटे से पापा के दिमाग में भी सोनगढ़ का वह दृश्य याद हो आया जिसमें गुरुदेव हाथ में एक छोटी सी लकड़ी लिए हुए हैं और प्रवचन करते हुए

श्रोताओं की तरफ दिखा रहे हैं। पापा ने मन ही मन निश्चय किया कि अब मैं सोनगढ़ जाऊँगा तो जरूर वह जादू की छड़ी लेकर आऊँगा और अपने दोस्तों को अपने वश में करके उन्हें अमीर भी बना दूँगा।

पापा जब अपने पापा के साथ सोनगढ़ गये तो चुपचाप वह लकड़ी उठा लाये व गाँव में आकर पड़ौस के दोस्तों को बुलाया एवं उन्हें सामने बैठाकर 'भगवान आत्मा... !' 'समझ में आया..!' ऐसा बारबार कहकर छड़ी घुमाने लगे। मेरे दादाजी भी यह सब देख रहे थे, पर उनकी समझ में कुछ नहीं

आया। जब थोड़ी देर हो गई तो मेरे पापा ने समझा अब यह सब मेरे वश में हो गये होंगे। परन्तु देर तक भगवान आत्मा! समझ में आया सुन–सुन कर बच्चे परेशान हो गये और वे सब मेरे पापा पर गुस्सा करते हुए बोले – ''क्या तेरा दिमाग खराब हो गया है, एक ही बात बारबार कहे जा रहा है।'' और गुस्सा होकर भाग गये।

पापा रुहांसे हो गये और उनकी गर्दन लटक गई। इतने में दादाजी वहाँ आये, उन्होंने पूछा – 'बेटा ये क्या कर रहे थे ? और ये छड़ी कहाँ से आई ?

पापा बाल सुलभ सहजता से बोले 'पापाजी ये लकड़ी तो मैं सोनगढ़ से चुराकर लाया हूँ।'

दादाजी बड़े आश्चर्य में पड़ गये, उन्होंने पूछा 'क्यों लाये यह लकड़ी ? तुमने चोरी की ?'

नीची गर्दन किए हुए पापा बोले – 'पापाजी उस दिन वह पण्डितजी कह रहे थे कि सोनगढ़ में कानजीस्वामी के पास एक जादू की लकड़ी है, जिस पर भी वह लकड़ी घुमा देते हैं, वह उनका होकर रह जाता है और मालामाल भी हो जाता है। मैं चाहता था कि मेरे सभी दोस्त मेरे वश में हो जायें और

अमीर भी हो जायें। पर मेरे दोस्त तो नाराज होकर चले गये, लगता है गलती से दूसरी लकड़ी आ गई।''

भोले-भाले पापा के यह कहते ही दादाजी की समझ में सब आ गया।

उन्होंने पापा को गोद में बैठाते हुए प्यार से समझाया। 'बेटा! गुरुदेवश्री के पास जादू की लकड़ी तो है पर किसी को वश में करने व मालामाल करने के लिए नहीं। उनके पास जिनवाणी रूपी छड़ी है, जिसके घुमाते ही दुनिया का माल, मल दिखने लग जाता है। बेटा ! वह तो धन को धूल कहते हैं, वह धूल बढ़ाने के लिए क्यों छड़ी घुमायेंगे। परिग्रह तो पाप है, वह तो पुण्य भाव को भी छोड़कर शुद्ध भाव में आने का उपदेश देते हैं, क्योंकि शुद्धभाव या वीतरागता ही धर्म है, पुण्य तो देवगति ले जाने वाला है और देवगति तो संसार ही है।'

पापा ने कहा - ''हाँ देवगति भी तो चार गतियों में से एक है और जिनवाणी तो चारों गतियों का नाश कर मोक्ष का मार्ग बतलाती है, पर पापा उनके हाथ में यह लकड़ी भी तो रहती है।''

''हाँ बेटा ! रहती तो है, क्योंकि उनके हाथ में पसीना बहुत आता है। पसीने से ग्रन्थ गंदा न होवे अविनय न हो

इसलिए ग्रन्थ के पेज बदलने के लिए वह लकड़ी रखते हैं। जो यह बात डंके की चोट कहते हैं कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का भला-बुरा नहीं कर सकता, वह लकड़ी घुमाकर दूसरे को वैभव होने की कल्पना भी नहीं कर सकता।''

''अच्छा अब बात समझ में आयी। पर पापा उनके श्रोताओं के पास पैसा आ तो जाता है। वह कैसे आता है ?''

''देखो बेटा ! पैसा पुण्योदय से आता है और जो व्यक्ति पाप छोड़कर, देव-शास्त्र-गुरु की आराधना करेगा, स्वाध्याय करेगा, कषायों से बचेगा, उसे पुण्य का ही बंध होगा और जब पुण्य उदय में आयेगा तो बाहर में धन-वैभव, मान-सम्मान तो मिलेगा ही न।''

''हाँ पापा ! अब मेरी समझ में सब आ गया, अब मैं किसी अंधविश्वास में नहीं फंसूँगा, न ही किसी को वश में करने के उपाय करूँगा और न ही धन-वैभव पाने के लिए धर्माराधन करूँगा, मैं तो एक मात्र आत्मार्थी होकर ही स्वाध्याय करूँगा।''

शाबासी देते हुए दादाजी पापा को भी साथ में लेकर स्वाध्याय के लिए चले गये।

मेरे पापा को तो बचपन में ही यह बात समझ में आ गई, पर अनेकों को तो पचपन में भी समझ में नहीं आ रही। शायद उनकी होनहार अभी भली नहीं है। ❍

8

पापा ने सीखा निश्चय-व्यवहार

बच्चे मन के सच्चे। बच्चे जो भी सुनते हैं, उसका प्रयोग भी वह शीघ्र ही करते हैं, भले ही वह पूरा समझें या नहीं। बड़े समझते ही रहते हैं, करते नहीं और बच्चे समझे बिना ही करने लगते हैं, अतः दोनों ही अपनी मंजिल पर नहीं पहुँच पाते।

एक दिन पाठशाला में भगवान महावीर का परिचय पढ़ते हुए हमारे पापा ने पढ़ा कि 'महावीर का जन्म चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को वैशाली गणतंत्र की राजधानी कुण्डग्राम में हुआ था। वे बहुत सुन्दर थे। उनके पिता का नाम राजा सिद्धार्थ व माता का नाम प्रियकारिणी त्रिशला था। उन्होंने 30 वर्ष की आयु में मुनि दीक्षा ली। उन्हें 42 वर्ष की आयु में केवलज्ञान की प्राप्ति हुई और वे अरहन्त बन गये। 72 वर्ष की आयु में आठों कर्मों का नाश कर कार्तिक कृष्ण अमावस्या के दिन पावापुरी से उन्हें मोक्ष की प्राप्ति हुई। उसी दिन से इस दिन दीपावली पर्व मनाया जाता है।'

पापा के पण्डितजी ने यह कहानी केवल सुनाई ही नहीं, एक-एक बात अच्छी तरह याद भी करवा दी।

बच्चों का अपने गुरुजी पर बहुत विश्वास होता है। उनके मुख से जो भी बात सुनते हैं, वही सबसे सही और अच्छी लगती है। उस बात से अलग हटकर माता-पिता भी कुछ कहें तो बच्चे मानते नहीं हैं। बाल मनोविज्ञान ऐसा ही होता है।

दशलक्षण पर्व पर प्रवचन के लिए पण्डितजी हमारे नगर में आये हुए थे। बहुत अच्छा माहौल चल रहा था। पापा प्रवचन में तो वैसे बैठते नहीं थे क्योंकि सभी ऐसा मानते थे कि बच्चे प्रवचन समझ नहीं सकते। सच तो यह भी था कि बड़े भी कहाँ समझते थे, केवल एक परम्परा थी कि प्रवचन होना चाहिए, अतः विद्वान आते व प्रवचन करते थे।

उस दिन रात्रि के सांस्कृतिक कार्यक्रम में पापा को भाग लेना था, अतः वे जल्दी पहुँच गये थे और प्रवचन जल्दी समाप्त हो यह भावना भाते हुए प्रवचन सुनने लगे।

प्रवचन में पण्डितजी कह रहे थे – "किसी भी जीव का कभी जन्म नहीं होता। प्रत्येक जीव अनादि-अनंत है, अतः किसका जन्मदिन ? माता-पिता भी जीव के नहीं है, अतः

किससे राग–द्वेष ? जीव तो अमूर्तिक है गोरा–काला, मोटा–पतला नहीं है। जीव तो अमूर्तिक प्रदेशों का पुंज प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों का धारी अनादिनिधन वस्तु है। उसकी श्रद्धा से ही सम्यग्दर्शन होता है।''

पापा अनमने ढ़ंग से प्रवचन सुनते रहे, उनकी समझ में यह आया कि पण्डितजी कैसी–कैसी गलत बातें पढ़ा रहे हैं और सब सुन रहे हैं। सांस्कृतिक कार्यक्रम के बाद पापा घर पर आते ही अपने पापा अर्थात् मेरे दादाजी से बोले – 'पापा आपके पण्डितजी कितना गलत–सलत पढ़ाते हैं। आप बीच में कुछ बोलते क्यों नहीं।'

दादाजी मुस्कराते हुए बोले – ''क्यों बेटा हमारे पण्डितजी ने क्या गलत पढ़ाया है ? तुम्हारे पण्डितजी ने इतना पढ़ा दिया कि तुम हमारे पण्डितजी की गलती निकालने लगे।''

पापा बोले – ''पाठशाला में हमारे पण्डितजी सही पढ़ाते हैं तभी तो हमें पाठशाला भेजते हो। वे सही नहीं पढ़ाते होते तो वर्षों से वह पाठशाला कैसे पढ़ा रहे होते ?'' पापा ने नाराजगी के साथ कहा।

''हाँ, यह बात तो है। पर यह तो बताओ कि हमारे पंडितजी ने क्या गलत बता दिया।'' मुस्कराते हुए दादाजी बोले।

''हमारे पण्डितजी ने हमें समझाया और याद कराया है कि भगवान महावीर का जन्म कुण्डग्राम में चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को हुआ था। उनके माता-पिता, आयु सब याद कराया है। आप भी तो महावीर जयन्ती मनाते हो, आज क्या है महावीर जयन्ती, त्रिशलानन्दन वीर की - जय बोलो महावीर की के नारे नहीं लगाते हो ? और उनके निर्वाण दिवस पर दीपावली के दिन पूजन करते हो। तो आप ही बताओ क्या यह सब गलत है ?''

''नहीं, बेटा यह सब तो बिल्कुल सही है।'' दादाजी बोले।

''तब फिर आपके पण्डितजी कह रहे थे कि जीव का जन्म नहीं होता। उसके कोई माता-पिता नहीं हैं। उसका शरीर नहीं है, किसी के माता-पिता नहीं है तो क्या आप हमारे पापा नहीं हो। मैं आपका बेटा नहीं हूँ।''

पापा व्यंग्य करते हुए बोले - ''आपके पण्डितजी की बात मान लें, तब तो महावीर जयन्ती, दीपावली और मेरे प्यारे पापा यह सब झूठ हो जायें। मेरा कोई नहीं है, बस जो हैं सब पण्डितजी के ही हैं।''

दादाजी मेरे छोटे से पापा की बातें और चेहरे के हाव-

भाव देखकर हंसते हुए बोले – ''बेटा तुम्हारे जितना तो मैं समझदार हूँ नहीं, इसलिए मैं पण्डितजी की गलती नहीं पकड़ पाया। अब तुम्हारे पण्डितजी की बात सही है या हमारे या दोनों की चलो हम पण्डितजी से ही समझ लेते हैं।''

''पापा इसमें समझने जैसी तो कोई बात है ही नहीं, फिर भी आप कह रहे हैं, तो चलो पण्डितजी के पास चलते हैं।''

पण्डितजी हमारे घर पर ही रुके हुए थे, अतः पापा अपने पापा के साथ पण्डितजी के कमरे में पहुँचे। पण्डितजी मेरे छोटे से पापा के चुलबुले स्वभाव व उनकी बुद्धि की तीक्ष्णता

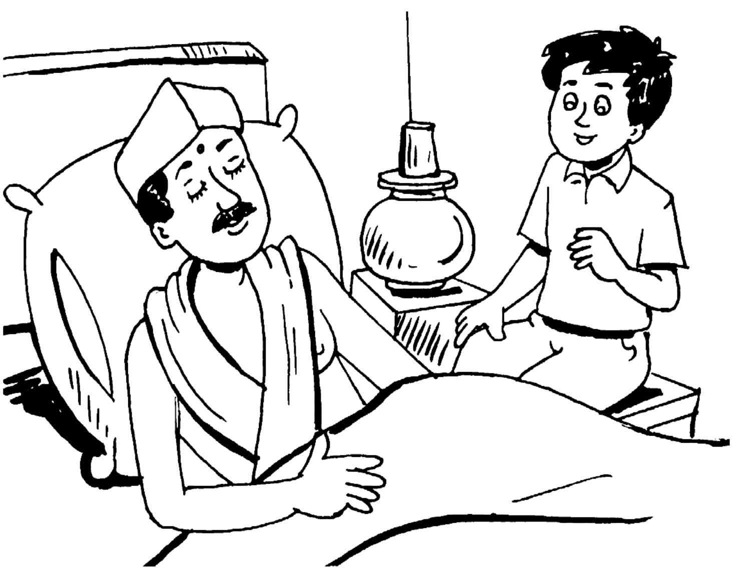

से परिचित थे। उन्हें आते देखकर पण्डितजी ने कहा ''अरे आओ पप्पू आओ। क्या बात है अभी तक नींद नहीं आई क्या ?''

दादाजी बीच में ही बोले ''अरे पण्डितजी नींद आने की बात तो छोड़ो, इसने तो हमारी ही नींद खराब कर दी है। आज यह आपके प्रवचन में बैठा था पर कुछ समझ नहीं आया तो यह समझना चाहता है।''

पापा को दादाजी की यह बात अच्छी नहीं लगी कि उन्हें समझ नहीं आया। इसलिए वह तुनकते हुए बोले ''मुझे प्रवचन समझ में नहीं आया ऐसा नहीं है। मैंने जितना भी सुना है पूरा याद है। पर आप सब गलत-सलत बता रहे थे तो मैंने घर आकर पापा से कहा कि पण्डितजी गलत बता रहे थे और पापाजी मुझे आपके पास लेकर आ गये।''

पण्डितजी पापा की स्पष्टवादिता और निर्भीकता पर प्रसन्न होते हुए बोले - ''अच्छा बेटा ! बताओ तो जरा मैंने क्या गलत बोला।''

''आप कह रहे थे आत्मा या जीव का जन्म नहीं होता, उसके माता-पिता नहीं हैं, उसका गोरा-काला रंग नहीं है।''

''हाँ कहा था, तो इसमें गलत क्या हुआ ?''

"अरे पूरा ही गलत हुआ न। हमारे पण्डितजी ने बताया कि महावीर का जन्म हुआ, उनकी माँ त्रिशला, पिता सिद्धार्थ थे, रंग गोरा था। हम सब महावीर जयन्ती भी मनाते हैं, तो फिर यदि जन्म ही नहीं होता तो महावीर जयन्ती कैसी ? और जब उनका जन्म हुआ तो मेरा क्यों नहीं ? मेरे माता-पिता क्यों नहीं ? मेरा गाँव व घर क्यों नहीं ? उनके सब थे तो मेरे भी हैं, इसलिए आपकी बातें गलत हैं।" पापा बहुत ही दृढ़ता के साथ सब एक सांस में ही कह गये।

पण्डितजी समझ गये कि पापा क्या समझे हैं और अब उन्हें क्या और कैसे समझाना है। सबसे पहले तो उन्होंने बाल मनोविज्ञान समझते हुए उनकी प्रशंसा करते हुए कहा - "पप्पू तुम सच में बहुत होशियार हो। मन के सच्चे हो, बुद्धि के पक्के हो। पाठशाला जाने वाले बच्चे बहुत अच्छे होते हैं। इसीलिए जो बात तुम्हारी समझ में आयी और किसी के नहीं आई।"

पापा अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होते हुए थोड़ा शान्त हुए।

पण्डितजी ने पापा से पूछा - "बेटा तुम्हें कौनसा फल अच्छा लगता है ?"

''पण्डितजी, मुझे तो फलों का राजा आम बहुत पसन्द है।'' उत्साहित होकर पापा ने कहा।

''आपके पापा आम लाते होंगे?''

''हाँ, मेरे पापा बहुत सारे आम लेकर आते हैं।''

''बेटा वह जितना और जैसा आम लाते हैं, वैसा ही खा लेते हो ?''

''पण्डितजी मैं कोई पागल थोड़े ही हूँ कि पापा जैसा

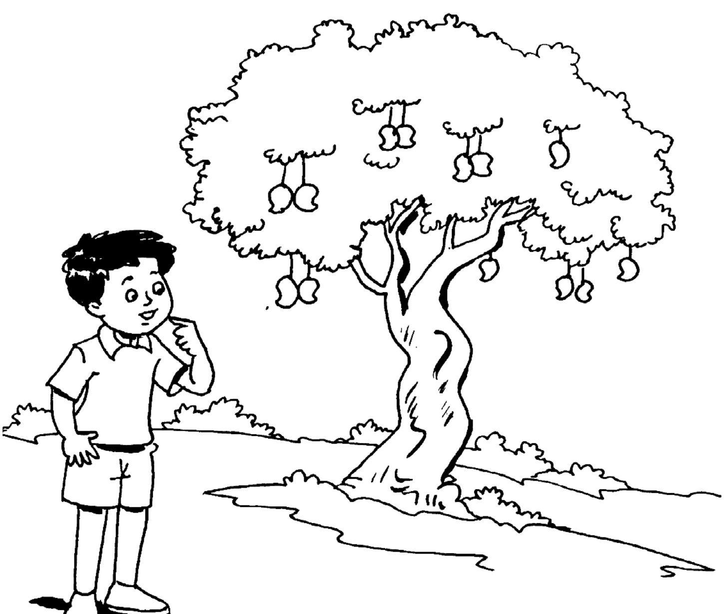

लायें, वैसा का वैसा पूरा खा जाऊँ। मैं तो रस खा लेता हूँ और छिलका व गुठली फैंक देता हूँ।''

''शाबास बेटा ! पर आपके पापा छिलका और गुठली लाते ही क्यों हैं ?''

पापा हंसते हुए बोले - ''पण्डितजी बिना छिलका-गुठली के कहीं पेड़ पर अकेला रस थोड़े ही लगता है, जो अकेला रस ले आवें। पेड़ पर तो ऐसा ही आम लगता है।''

''बेटा जब बिना छिलके-गुठली के आम आता नहीं है, तो फिर उनको खाते क्यों नहीं हो ?''

''अरे पण्डितजी! रस उनके बिना नहीं आता इसलिए लाते हैं, पर छिलका और गुठली आम थोड़े ही हैं, वे साथ में जरूर हैं। वह रस के साथ में होने से आम कहलाते हैं बिना रस के तो केवल कचरा हैं कचरा। बाहर फैंकने लायक। इत्ती सी तो बात है।'' पापा उत्साहित होते हुए जोर-जोर से बोलने लगे।

''शाबास बेटा ! सच में तुम बहुत होशियार हो। तुम जल्दी भगवान बनोगे। बेटा ! जैसे हरे छिलके में होने पर हरा आम और पीले छिलके में होने पर पीला आम कहलाता है, बस आम की ही तरह आत्मा गोरे शरीर में हो तो गोरा, काले शरीर में हो तो काला कहलाता है, जिनके निमित्त से शरीर

मिला, उन्हें माता–पिता कहते हैं। पर सच में वह शरीर आत्मा नहीं है। जब तक शरीर में आत्मा है तब तक ही वह आत्मा कहलाता है, नहीं तो वह कचरा है कचरा, जलाने लायक। कुछ समझ में आया पप्पू।'' पण्डितजी हंसते हुए बोले।

पापा चुपचाप गर्दन हिलाते हुए कुछ समझ में आया का इशारा करते रहे।

'पण्डितजी थोड़ा और समझाओ न। आपकी बातें अच्छी लग रही हैं।'

'देखो बेटा ! जिस गिलास में दूध होता है, उस गिलास को भी दूध कहते हैं, पर गिलास दूध नहीं है गिलास में दूध है। जिस डिब्बे में शक्कर रखी है, उस डिब्बे को भी शक्कर कहते हैं, पर डिब्बा शक्कर नहीं है। जैसे छिलके में आम है, पर छिलका आम नहीं, उसीप्रकार गोरे–काले, मोटे–पतले शरीर में आत्मा है, पर शरीर आत्मा नहीं है।'

'पण्डितजी अब कुछ–कुछ समझ में आ रहा है, पर आप प्रवचन में कह रहे थे कि निश्चय से आत्मा अरूपी है, व्यवहार से गोरा–काला कहते हैं। यह निश्चय–व्यवहार क्या है ?'

'बेटा ! निश्चय–व्यवहार वस्तु को जानने, कहने, समझाने का साधन हैं, इन्हें ही नय कहते हैं। एक ही वस्तु को अलग–अलग दृष्टिकोण से कहना नय है। जो वस्तु जैसी है, उसे वैसी ही कहना निश्चय नय है और अन्य प्रयोजन से और प्रकार की कहना व्यवहार नय है।

जैसे – शक्कर को शक्कर कहना निश्चय और जिस डिब्बे में शक्कर है, उस डिब्बे को शक्कर कहना व्यवहार। दूध को दूध कहना निश्चय पर जिस स्टील के गिलास में दूध है, उसे दूध या दूध का गिलास कहना व्यवहार।'

'अरे वाह पण्डितजी ! तो फिर इसी तरह अरूपी आत्मा को अरूपी, अजन्मा कहना निश्चय और गोरे–काले शरीर में होने के कारण आत्मा को गोरा–काला या मनुष्य कहना व्यवहार। सही है न!'

'हाँ बेटा ! बिल्कुल सही समझे हो।' ऐसा कहकर पण्डितजी हंसने लगे।

''पर पण्डितजी एक बात समझ में नहीं आ रही कि जब छिलका आम नहीं, गिलास दूध नहीं, शरीर आत्मा नहीं तो फिर इनको आम, दूध, आत्मा कहते ही क्यों हैं ?''

''बेटा ! दूध पीने के पहले दूध को बिना किसी बर्तन में

उसे रख नहीं सकते, अतः जिस गिलास में दूध रखते हैं, उसे दूध कहते हैं, जिससे कि कोई भी उसे सुरक्षित रख सके और जहाँ दूध है, वहाँ तक पहुँच सके। इसी तरह मोक्ष जाने के पहले आत्मा किसी न किसी शरीर में ही रहता है, अतः आत्मा तक पहुँचने के लिए शरीर को भी आत्मा कहा जाता है।''

पापा गंभीरता से बोले – ''अच्छा पण्डितजी अब मेरी समझ में आ गया, पाठशाला में हमारे पण्डितजी ने व्यवहार नय से समझाया था और आप प्रवचन में निश्चय नय से समझा रहे थे। दोनों ही बातों में विरोध दिखता है, पर विरोध है नहीं।''

''हाँ बेटा ! पर एक बात और भी ध्यान रखना है कि गिलास, दूध कहने लायक है, पर दूध समझ कर पीने लायक नहीं, पीने लायक तो दूध ही है। शक्कर का डिब्बा शक्कर कहने योग्य है, पर शक्कर मानकर दूध में डालने योग्य नहीं, आम का छिलका आम कहने योग्य है, पीने योग्य नहीं, पीने योग्य रस ही है।''

''हाँ, हाँ सही है।'' उत्साहित होकर पापा बोले – 'अरस-अरूपी, अजन्मा ही आत्मा मानने योग्य है, गोरा-काला या मनुष्य शरीर नहीं।''

''हाँ बेटा ! तुम बिल्कुल सही समझे।''

पापा नीचे गर्दन करते हुए बोले – ''पण्डितजी मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ। मैंने आपको अपनी अज्ञानता से गलत कहा, आप जैसे विद्वान को गलत समझा। प्लीज आप मुझे क्षमा कर दीजिए।''

पण्डितजी हंसते हुए बोले – ''इन नयों को समझे बिना तुम छोटे अज्ञानी ने तो हमें गलत ही कहा, परन्तु बड़े अज्ञानी तो.... खैर छोड़ो।''

दादाजी बोले ''बेटा ! अब आप प्रवचन में आओगे तो और भी अच्छी बातें समझ में आयेंगी। आज बहुत समय हो गया। अब पण्डितजी को आराम करने दो और तुम भी आराम करो। अच्छा पण्डितजी जयजिनेन्द्र।''

''जयजिनेन्द्र'' कहकर मेरे छोटे से पापा ने पण्डितजी से कहा – आपने बहुत सरलतापूर्वक नयों का स्वरूप समझा कर मेरे ऊपर उपकार किया है, मैं इन नयों के प्रयोग और उनके प्रयोजन को कभी नहीं भूलूँगा। पापा प्रसन्नतापूर्वक पण्डितजी के चरण स्पर्श करके दादाजी के साथ अपने कमरे में चले गये। ❍

९

पापा ने सीखा निमित्त-उपादान

मेरे पापा का दिमाग बचपन से ही बहुत तेज था। पापा तो वह बाद में बने पर बचपन में तो वह बच्चे ही थे और उनमें बचपना भी भरपूर था। मेरी दादी पापा को जबरदस्ती मंदिर भेजा करती थी। पापा का मंदिर जाने का मन नहीं होता था, अतः रोज ही दादी और पापा में वाक् युद्ध हुआ करता था। दादी कहतीं – 'यदि तुम मंदिर नहीं जाओगे तो आज भोजन नहीं मिलेगा।' कभी कहतीं – 'मंदिर जाने से धर्म होता है। मंदिर जाने से पुण्य बंधता है। मंदिर जाओगे तो बुद्धि बढ़ेगी। मंदिर जाओगे तो बड़े आदमी बन जाओगे....आदि।'

पापा कहते – 'मंदिर जाने से क्या होगा ? भगवान कुछ देते तो हैं नहीं। उनके पास है भी क्या जो मुझे दे देंगे।'

दादी कहतीं – 'बेटा ऐसा नहीं कहते। ऐसा कहने से पाप लगता है। मंदिर जाने से हमारे भाव अच्छे होते हैं, पुण्य बंधता है।'

पापा कभी मन से तो कभी दादी का मन रखने के लिए

जबरदस्ती मंदिर जाते। कभी तो वह भगवान के दर्शन करते, तो कभी दौड़कर परिक्रमा लगाकर भाग आते और कभी तो जहाँ चंदन रखा रहता है, वहाँ जाते और तिलक लगाकर ही भाग आते।

एक बार मंदिर में पण्डितजी प्रवचन कर रहे थे, तभी पापा दर्शन करने पहुँचे, पापा कौतुहलवश इधर-उधर देखते हुए पण्डितजी की बातें सुनने लगे। पण्डितजी कह रहे थे – ''प्रत्येक द्रव्य में जो भी कार्य होता है, वह उसकी अपनी योग्यता से ही होता है। जिस छात्र में पढ़ने की योग्यता हो

वही पढ़ सकता है, विद्यालय जाने या पुस्तकों से ज्ञान नहीं होता, यदि विद्यालय या पुस्तक से ज्ञान होता तो सभी छात्रों को एक–सा ज्ञान होना चाहिए।

दुकान पर जाने से पैसा नहीं आता, पुण्योदय से आता है। यदि पुण्य का उदय न हो तो कितनी भी देर दुकान पर बैठो कुछ लाभ नहीं होता। एक बाजार में एक जैसी दुकान होने पर भी जिसका जितना पुण्य हो उसे उतना ही लाभ होता है, उसी बाजार में किसी की दीवाली होती है, तो किसी का दिवाला निकल जाता है।''

पापा मंदिर से दादी के साथ आना चाहते थे, पर दादी प्रवचन सुन रही थीं, अतः वे भी बेमन से प्रवचन सुनने बैठ गये थे।

अगले दिन सुबह बाथरूम से निकलते ही पापा बोले – ''माँ जल्दी से नाश्ता दो, मुझे बड़े जोर से भूख लग रही है।''

दादी बोली – 'बेटा पहले मंदिर जाकर दर्शन करके तो आओ।'

पापा बोले – 'अरे माँ ! आप रोजाना प्रवचन सुनती हो, पर न तो कुछ समझती हो, न जीवन में उतारती हो। मंदिर

जाने से क्या होता है ? यदि मेरे भाव अच्छे होने हैं, तो यहीं हो जायेंगे।'

दादी हंसते हुए बोलीं – "अरे ओ पण्डितजी ! यह प्रवचन बन्द कर और मंदिर जाकर भगवान के दर्शन करके आ। जब देखो तब फालतू की बातें करता रहता है।"

'अरे नहीं माँ ! मैं फालतू की बातें नहीं कर रहा। मैं तो सही कह रहा हूँ। कल ही आपके पण्डितजी का प्रवचन मैंने सुना। आपको तो पता ही है, मेरा दिमाग कितना तेज है, एक बार में ही सब याद हो जाता है और समझ में भी आ जाता है। जब कोई बात एक बार में ही समझ में आ गई तो उसके अनुसार ही काम करना चाहिए न ? सुनो, समझो कुछ और, करो कुछ और, यह तो मुझे अच्छा नहीं लगता।'

दादी पापा की बातें सुनकर हंसते हुए बोलीं – "अच्छा मेरे होशियार बेटे मुझे भी तो बता कि कल क्या प्रवचन सुना है, मेरा दिमाग तो कमजोर है, वैसे ही बुड्ढी हो रही हूँ, मुझे जल्दी समझ में नहीं आता।"

"माँ कल पण्डितजी कह रहे थे न कि दुकान पर बैठने से दुकान नहीं चलती, विद्यालय जाने या पुस्तकों से ज्ञान

नहीं होता। काम तो अपनी स्वयं की योग्यता से ही होता है। बोलो माँ कह रहे थे न ?''

'हाँ कहा तो था।' दादी ने प्यार से पापा की ओर देखते हुए कहा।

''बस तो इसी तरह मंदिर जाने से भाव अच्छे नहीं होते, भाव अपनी योग्यता से अच्छे होते हैं। अब लाओ नाश्ता भूख लग रही है। मंदिर जाकर समय खराब करने से कोई लाभ नहीं।''

दादी बोलीं 'बेटा ! तुम्हें याद तो हो गया पर तुमने सही ढ़ंग से समझा नहीं है। मेरे बेटे का दिमाग बहुत तेज है न। पर इसे अच्छी तरह से समझना होगा।'

पापा बोले – 'बिल्कुल साफ और सच्ची बात है, इसमें अच्छी तरह से समझने जैसा कुछ है ही नहीं। मैं तो अब स्कूल भी नहीं जाऊँगा। ज्ञान तो अपनी योग्यता से होता है, मेरी योग्यता तो वैसे ही बहुत ज्यादा है। माँ लाओ नाश्ता दो न।''

दादी बोली – ''बेटा आज मेरे कहने से मंदिर जाकर आओ और आज तुम्हारे स्कूल की छुट्टी तो है ही इसलिए तुम आज प्रवचन में मेरे साथ चलना। मैं पण्डितजी को

बताऊँगी कि देखो पण्डितजी मेरा बेटा कितना होशियार है एक दिन में ही कितना समझ गया। जो बात आपके श्रोता वर्षों में नहीं समझ सके, मेरा राजा बेटा एक दिन में समझ गया। पर बेटा अभी तुम मन्दिर जाकर आओ तब तक मैं नाश्ता लगाती हूँ।''

पापा अपनी प्रशंसा सुनकर खुश हो रहे थे, अतः दौड़ते हुए मन्दिर चले गये।

दादी सोचने लगी, जिनवाणी पढ़कर ही लोग मिथ्यात्व का नाश करते हैं और यदि समझने में थोड़ी सी असावधानी रह गई तो इन्हीं मिथ्यात्व नाशक वचनों से जीव अपनी योग्यता से मिथ्यात्व का पोषण भी कर लेता है।

दादी ने मंदिर जाकर पण्डितजी को पहले से ही कह दिया कि आज प्रवचन में मेरा बेटा आयेगा। उसे कल का प्रवचन समझ में नहीं आया आप कृपा करके उसे अच्छी तरह से समझा देना।

पण्डितजी ने प्रवचन के प्रारम्भ में ही पापा से कहा 'बेटा आपको क्या समझ में नहीं आया ? जो समझ में नहीं आया हो पूछ सकते हो।'

पापा जरा गुस्से में बोले – 'किसने कहा कि मुझे समझ में नहीं आया। आपने कल कहा था न कि दुकानदार दुकान नहीं चलाता, विद्यालय, गुरुजी या पुस्तक से ज्ञान नहीं होता। दुकान का चलना या छात्र को ज्ञान अपनी योग्यता से होता है। यही कहा था न आपने ?'

'हाँ बेटा यही कहा था।' पण्डितजी ने शांत भाव से मुस्कुराते हुए कहा।

''बस तो ठीक है न मुझे आपका प्रवचन याद भी है और समझ में भी आ गया। मुझे आपकी बात पर विश्वास भी है। मैं यहाँ बैठे और श्रोताओं जैसा नहीं हूँ, ये सब रोज सुनते हैं कि बेटा अपना नहीं फिर भी उसे अपना ही कहते-फिरते हैं। दुकान चलाने से नहीं चलती रोज सुनते हैं, पर प्रवचन सुनते ही दुकान की तरफ भागते हैं। मैं तो आपकी बात पर विश्वास कर कि कार्य अपनी योग्यता से होता है, कोई कुछ नहीं कर सकता, इसलिए अब मैं मंदिर क्यों जाऊँ? विद्यालय क्यों जाऊँ ? जहाँ से ज्ञान मिलना ही नहीं वहाँ जाते रहना तो बेवकूफी है और ऐसा बेवकूफ मैं नहीं हूँ।'' पापा ने हांफते हुए सारी बात पूरी कह दी।

पण्डितजी और अन्य श्रोता पापा की बुद्धि, बेबाकी और सरलता देखकर प्रसन्न हो रहे थे।

पापा खड़े होते हुए दादी से बोले – 'देखा माँ ! मैंने कहा था न मुझे सब समझ में आ गया। मेरा दिमाग बहुत तेज है। पर तू मानती नहीं। अब मैं खेलने जाऊँ।'

पण्डितजी बोले – 'बेटा सच में तुम्हारा दिमाग बहुत तेज है। तुम्हारे जैसे श्रोता हों तो सभा में मजा आ आये, पर बेटा 10 मिनिट और रुक जाओ, फिर खेलने जाना।'

पापा अपनी प्रशंसा सुनकर खुश हो गये। वे बोले – 'ठीक है आप कहते हैं तो 10 मिनिट और रुक जाता हूँ।'

पण्डितजी बोले – 'बेटा तुमसे एक बात पूछूँ?'

'हाँ, हाँ पूछो न।'

'बेटा आपके मकान में रसोईघर, सोने का कमरा, बाथरूम सभी होंगे न ?'

'हाँ हैं, हमारा तो बहुत बड़ा मकान है।'

'पर बेटा जब भूख लगती है, तब भोजन करने इनमें से कहाँ जाते हो?'

'अरे पण्डितजी ! इसमें पूछने जैसी क्या बात है, भोजन तो रसोईघर में ही करेंगे न।'

'पर बेटा सभी कमरे अपने घर में हैं, हमें भूख लगी है, तो कहीं भी भोजन कर सकते हैं न? कमरे तो खाये नहीं जाते। कोई बाथरूम आपको भोजन करने से रोकता है क्या?

'छि: छि: पण्डितजी, आप भी कैसी गंदी बातें कर रहे हैं। बाथरूम में बैठकर कभी भोजन किया जाता है क्या ? बाथरूम नहीं रोकता, न ही बाथरूम खाया जाता है, पर वहाँ तो खाने का विचार भी नहीं आता।'

'अच्छा बेटा बाथरूम में तो भोजन का विचार नहीं आता, पर जब-जब रसोई में जाते हो तब-तब भोजन का विचार आता है।'

पापा कुछ सोचते हुए बोले - 'नहीं पण्डितजी। रसोई में तो किसी भी काम से जाते ही रहते हैं। भोजन का विचार तो तभी आता है, जब भूख लगी होती है।'

'शाबास बेटा ! इतने अच्छे जवाब तुम्हारे जैसे तेज दिमाग वाला ही दे सकता है। बस इसी तरह बेटा विद्यालय जाने से ज्ञान नहीं होता, न ही मंदिर जाने मात्र से धर्म होता है, परन्तु

विद्यालय में ही समझने के भाव बनते हैं, मंदिर में ही धर्म समझने, करने के भाव होते हैं इसलिए मंदिर आना चाहिए। जब–जब मंदिर आओगे तब–तब भाव सुधरेंगे ऐसा नहीं है, परन्तु जब भाव सुधरने की योग्यता होगी तब उसमें मंदिर ही कारण बनेगा, टॉकीज नहीं, जब ज्ञान की योग्यता होगी, तब विद्यालय, गुरुजी और पुस्तक ही कारण बनेगी, टी.वी. और अखबार नहीं।'

पापा यह सुनकर कुछ सोच में पड़ गये और सिर खुजलाते हुए धीरे–धीरे बोले पण्डितजी फिर तो एक काम के दो कारण हो गये। एक अपनी योग्यता और दूसरा विद्यालय, मंदिर आदि।'

'हाँ बेटा ! अब आप सही समझ रहे हो। अपनी योग्यता उपादान कारण कहलाती है, क्योंकि जिसकी जैसी योग्यता होगी वैसा ही काम होगा। जैसे एक ही विद्यालय में पढ़ने वाले प्रथम श्रेणी से भी उत्तीर्ण होते हैं और तृतीय श्रेणी से भी। गुरुजी तो किसी को अलग नहीं पढ़ाते।

ऐसे ही जिसे धर्म समझना है या धर्म प्रकट करना है, जिसकी योग्यता आ गई है, वही मंदिर में आकर अपनी योग्यता से समझता है। पण्डितजी या शास्त्र के कारण नहीं।

जब छात्र को ज्ञान होता है या धर्मी को धर्म होता है, उसमें विद्यालय या मंदिर निमित्त कहलाते हैं। इस तरह दो कारण हुए एक उपादान, दूसरा निमित्त। निमित्त से काम नहीं होता, पर निमित्त के बिना भी काम नहीं होता।

''अच्छा ! अब समझ में आया तो काम अपनी योग्यता से होगा। पर हमें अपनी योग्यता तो दिखती नहीं है कि कब क्या होना है, इसलिए रोजाना मंदिर जाते रहे, शास्त्र पढ़ते रहो, कार्य जब अपनी योग्यता होगी तब हो जायेगा।''

''हाँ बेटा और जैसे बाथरूम में भोजन का विचार नहीं आता, वैसे ही टी.वी. देखते, अखबार पढ़ते, खेलते-कूदते तो कभी धर्म, आत्मा, पंचपरमेष्ठी का विचार भी नहीं आता, इसलिए आपकी माँ आपको मंदिर भेजती है।''

''पर पण्डितजी माँ यह सब तो बताती नहीं, वह तो कहती है कि मंदिर नहीं जाओगे तो भोजन नहीं मिलेगा, इसलिए जब हमें भूख लगती है तो दौड़कर मंदिर आते हैं, मानो भगवान की अनुमति से भोजन करते हैं।''

''बेटा भोजन नहीं मिलेगा, यह कहना तो आपको यहाँ तक लाने का बहाना है। पहले जैसे स्कूल में प्ले ग्रुप में एडमीशन दिलाकर खेल खिलाते हैं, मिठाई देते हैं, इसका

मतलब ऐसा नहीं है कि बच्चों को खेलने–कूदने स्कूल भेजते हैं। यह तो उनकी आदत विद्यालय आने की बने, घर छोड़कर कुछ समय मम्मी–पापा से अलग रहने की आदत बने इसलिए ऐसा करते हैं। अब आप पाँचवीं में पढ़ रहे हो और प्ले ग्रुप जैसा ही खिलाते रहें तो आपको अच्छा लगेगा या पढ़ना अच्छा लगता है।''

''पण्डितजी अब तो पढ़ना अच्छा लगता है। खेलना तो एकाध घण्टा ही ठीक है, नहीं तो बस जिंदगी भर खेलते ही रह जायेंगे, जिन्दगी में कुछ कर ही नहीं पायेंगे।''

''बस बेटा ! इसी तरह मंदिर आने के लिए तरह–तरह से नियम दिलाते हैं, पूजा–पाठ–भक्ति कराते हैं, जिससे कि मंदिर आने की आदत बने, स्वाध्याय में बैठने की आदत बने, जब रोजाना स्वाध्याय करने लगते हैं, जिनवाणी के रहस्य समझने लगते हैं, तब परिणामों में भी विशुद्धता बढ़ती है। इसीलिए बेटा यह सत्य अपने तेज दिमाग से अच्छी तरह समझना कि कार्य अपनी योग्यता से ही होता है और वहाँ पर उस कार्य के अनुकूल निमित्त भी अवश्य होते हैं। उपदेश में निमित्त जुटाने की बात भर की जाती है।''

"वाह पण्डितजी, आज आपने बहुत अच्छा समझाया। अब मेरी समझ में सब आ गया।"

"अच्छा बताओ आप क्या समझ गये ?" पण्डितजी पापा के भोलेपन पर हंसते हुए बोले।

"यही कि कार्य तो मेरी योग्यता से ही होगा। भाव मेरी योग्यता से योग्य समय पर ही सुधरेंगे अर्थात् अशुभ से शुभ रूप होंगे पर उसमें मंदिर, देव–शास्त्र–गुरु निमित्त होंगे, इसलिए हमें भावों की शुद्धि के लिए मंदिर आना, स्वाध्याय करते रहना चाहिए।"

"शाबास बेटा ! अब आप जा सकते हो।"

"धन्यवाद पण्डितजी। जयजिनेन्द्र।"

"जयजिनेन्द्र बेटा।" ❍

मात–पिता पछतायें फिर, करें भूल स्वीकार।
इस जीवन में कीमती, हैं सबसे संस्कार।।

मात–पिता से बीनती, बच्चों को दें संस्कार।
देव–गुरु महिमा बता, सिखा श्रावकाचार।।

10

पापा ने पटाखे फोड़ना छोड़ा

मेरे पापा अपने मुहल्ले के बच्चों के नेता थे। जब भी विद्यालय में छुट्टियाँ होने वाली होतीं, वे इन सभी बच्चों को लेकर मीटिंग लेकर योजनायें बनाने लगते कि इन छुट्टियों में क्या खेलना है, किसे परेशान करना है, किसके घर जाकर छुपेंगे ? आदि।

पापा का दिमाग तेज चलता था, वे बहुत ही हाजिर जवाब थे, जिसके कारण मुहल्ले के सभी बच्चे उनके आगे पीछे घूमते-फिरते थे। साथ ही मेरी दादी भी बहुत प्रेमी थी, जब भी पापा अपने दोस्तों के साथ घर पर आते वे सभी बच्चों को कुछ न कुछ प्रेम से खिलाती थी। बच्चे तो खाने-पीने में अग्रणी रहते ही हैं।

दीपावली के अवकाश विद्यालय में होने वाले थे। दुकानदार बाजार में लगे हुए थे, मातायें बहिनें घरों की सफाई में संलग्न थीं और बच्चे भी अपनी माँ का हाथ बंटा रहे थे, पर साथ ही उनकी अपनी भी तैयारी चल रही थी कि दीपावली के समय

क्या करना है ? कौन से कपड़े पहनने हैं, पटाखे कहाँ से और कितने लाने हैं ?

सभी बच्चे अपने माता-पिता से पटाखों के लिए पैसे मांग रहे थे, मेरे पापा भी जैसे ही दादाजी भोजन करने घर आये, उनसे बोले ''पापाजी मुझे पटाखे खरीदने के लिए पैसे चाहिए।''

दादाजी बोले - ''देखो बेटा ! पटाखे फोड़ने से हिंसा होती है, पैसे की बरबादी होती है, ध्वनि-वायु प्रदूषण होता है, इसलिए बेटा हमें पटाखे नहीं फोड़ना चाहिए।''

''पर हमें तो पटाखे फोड़कर मजा आता है।''

''पर बेटा ! जो काम करके दूसरों को कष्ट हो, वह काम क्यों करना ? कोई दूसरा ऐसा काम करे, जिससे आपको या आपके दादाजी को परेशानी हो तो आपको अच्छा लगेगा ? पटाखे फोड़ने से धन की बरबादी ही होती है, गंदगी फैलती है, लाभ कुछ भी नहीं होता। इसकी जगह....''पापा मैंने आपसे प्रवचन नहीं मांगा, पैसे मांगे हैं और मुझे पैसे चाहिए।'' पापा जरा तुनकते हुए बोले।

''मेरे सभी दोस्त कितने पटाखे ला रहे हैं। मैं भी लाऊँगा।''

दादाजी को समझ में आया गया कि पप्पू ऐसे नहीं समझेगा। वह बोले ''ठीक है बेटा अभी तो दीपावली 4 दिन बाद है,

मैं साथ में चलकर पटाखे दिला दूँगा।''

''पापा प्रॉमिस, देखो आप बाद में मुकर मत जाना, नहीं तो मेरे दोस्तों के बीच में मेरी नाक कट जायेगी।''

पापा ने गंभीरता से कहा – नाक कटने वाली बात पर दादाजी को हंसी आ गई, वे हंसते हुए बोले – 'अरे नहीं कटेगी बेटा। मेरे बेटा की वैसे ही छोटीसी तो नाक है, वह भी कट गई तो फिर वह सांस कैसे लेगा ?''

''पापा यह हंसने वाली बात नहीं है, मैं सीरियसली बात कर रहा हूँ।''

''हाँ बेटा मैं भी सीरियस हूँ। दो दिन बाद आप मेरे साथ चलना और अपने पसन्द के पटाखे ले लेना।''

गली में तो बच्चे अभी से पटाखे फोड़ने लगे थे। पर पापा ने दो दिन बाद का प्रॉमिस कर लिया था, अतः घर की देहली पर बैठे-बैठे देख रहे थे कि कौन कितने और कौन से पटाखे फोड़ रहा है, दो दिन बाद उनसे ज्यादा और अच्छे पटाखे मैं भी लाऊँगा।

धनतेरस का दिन था और पापा के पटाखे लाने का एक दिन बाकी रह गया था। बस सुबह ही पटाखे आने वाले हैं, सोच कर पापा प्रसन्न हो रहे थे। रात के साढ़े आठ बजे थे।

दादाजी दुकान से आये ही थे। गली में बच्चे पटाखे फोड़ रहे थे। कानफोड़ ध्वनि व धुंआ फैलने लगा था। बच्चे लोगों को पास में आता देखकर जानबूझकर पटाखे फोड़ रहे थे, पटाखे की ध्वनि से लोग दमक कर भागते और बच्चे हंसने लगते।

एक शरारती बच्चे ने कुत्ते की पूंछ में पटाखों की लड़ी

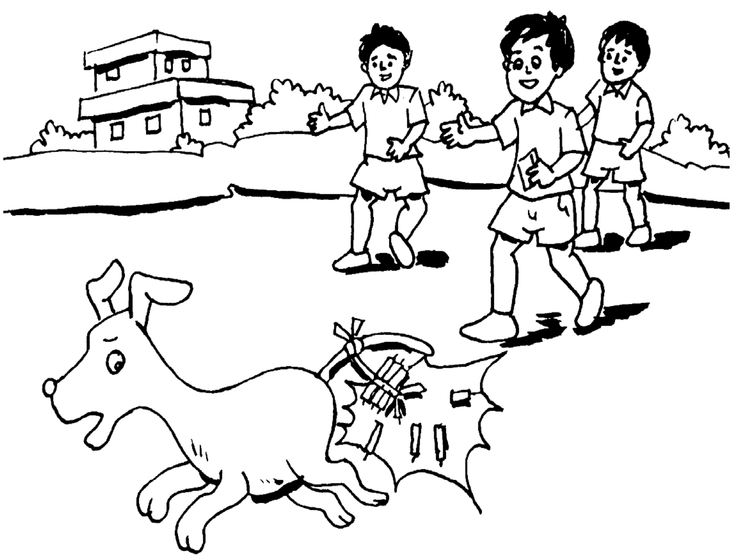

बांधकर आग लगा दी, जैसे ही पटाखे फूटना चालू हुआ कुत्ता भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगा, दूसरे सब लोग भी घबरा गये। कुत्ता भागते-भागते हमारे घर में ही आ गया। बैठक में आते-आते भी उसकी पूंछ में बंधे 4-5 पटाखे फूट

गये। जैसे–तैसे कुत्ता को पकड़ा। पटाखे खतम हो गये, पर कुत्ते की दयनीय हालत देखकर पापा सकते में आ गये। गली के बच्चे तो मजे ले रहे थे।

कुत्ता तो बाहर हो गया, पर घर में आग लगने से बची। उधर घर में ही बारूद का धुंआ फैलने से पापा के दादाजी की सांस उखड़ गई। वह जोर–जोर से हांफने लगे। मेरे दादाजी उनकी मालिस कर रहे थे, पर दमा काबू में नहीं आ रहा था। दादाजी डॉक्टर को फोन लगा रहे थे पर गली में बच्चे पटाखे फोड़ रहे थे, अतः डॉक्टर से बहुत मुश्किल से बात हो सकी। डॉक्टर आये तब बड़ी मुश्किल में उनका स्वास्थ्य सही हुआ।

पटाखे के कारण कुत्ता जल गया था, जिसके कारण उसे बहुत तकलीफ हो रही थी। दादाजी ने प्रातःकाल पशु चिकित्सालय में कुत्ते का भी इलाज करवाया।

मेरे छोटे से पापा यह सब देख रहे थे।

कुत्ते की पूंछ में बंधे हुए कुछ पटाखे घर में ही फूटे थे, जिनका कचरा दादी ने सुबह उठाया। मेरे पापा ने जब समाचार–पत्र पढ़ा तो शहर में अन्यत्र भी पटाखों के कारण दुकान जलने एवं अनेक लोगों के घायल होकर हॉस्पिटल पहुँचने के समाचार प्रकाशित हुए। यह पढ़कर छोटे से पापा के मन में करुणा का भाव जागृत हो रहा था।

सुबह दादाजी बाजार जा रहे थे, उन्होंने पापा से कहा बेटा! चलो बाजार चलते हैं, तुम्हें पटाखे दिला देते हैं और हंसते हुए कहा नहीं तो तुम्हारी नाक कट जायेगी और मेरा प्रॉमिस टूट जायेगा।

पापा गंभीरता से बोले – "पापाजी आइ एम सॉरी।"

"क्यों बेटा आपने क्या किया जो सॉरी बोल रहे हो।"

"पापाजी आपने उस दिन सही ही कहा था कि पटाखों के फोड़ने से कोई लाभ नहीं है, इनसे केवल ध्वनि–वायु का प्रदूषण, धन की बरबादी, स्वास्थ्य की हानि, दूसरों को परेशानी ही होती है, इसलिए अब मैं पटाखे नहीं फोड़ूंगा।"

"पर बेटा पटाखे फोड़कर आपको तो मजा आता है न?" दादाजी ने कहा।

"पापाजी जिस कार्य के करने से इतने नुकसान होते हों, उन कामों में मजा मानना मूर्खता है और अब मैं ऐसी मूर्खता नहीं करूँगा। मैं अपने दोस्तों को भी समझाऊँगा कि वह भी पटाखे न फोड़ें, मुझे विश्वास है कि जैसे वह मेरी और बात मानते हैं, यह भी मानेंगे।"

मेरे प्यारे छोटे से पापा की बात सुनकर उनके पापा ने उन्हें गले से लगा लिया और पापा की समझदारी से लिये गये निर्णय से प्रसन्नता से आँखें छलक आयीं। ❍

11

पापा ने समझी जीव-अजीव की भिन्नता

पापा अपने पापा के कहने से प्रतिदिन पाठशाला जाया करते थे। पाठशाला में जो भी पढ़ते फटाफट याद करके सुना देते क्योंकि उनका दिमाग तो तेज था ही। पाठशाला के पण्डितजी कहा करते इसका दिमाग तो कम्प्यूटर जैसा चलता है। पापा अपनी प्रशंसा सुनकर और जल्दी याद करने लगते।

पाठशाला में जीव-अजीव का पाठ चल रहा था। पण्डितजी पढ़ा रहे थे कि जानने-देखने और सुख-दुःख का अनुभव करने वाला जीव है और गोरा-काला-मोटा-पतला, सुगंध-दुर्गंध वाला शरीर है, वह अजीव है। पापा ने परिभाषायें तो पढ़ लीं, परन्तु वह पण्डितजी से बोले -

'पण्डितजी आप कह रहे हैं कि जीव अलग है, अजीव अलग है और एक साथ रह रहे हैं। पर यदि दो हैं तो दो दिखते तो हैं नहीं। जब मैं पाठशाला आता हूँ तो मैं ही तो आता हूँ। विद्यालय जाता हूँ, भोजन करता हूँ तो वह मैं ही तो हूँ। दो कहाँ हैं ? मैं किसी को मंदिर ले जाऊँ, मैं किसी को भोजन

कराऊँ तब तो दो कहलायें पर ऐसा तो है नहीं।''

पण्डितजी बोले – ''बेटा प्रिंस ! तुम्हारा दिमाग तो तेज चलता है, इसीलिए तुमने यह प्रश्न किया पर बेटा यह बताओ कि तुमने विज्ञान में पानी का सूत्र पढ़ा है ?''

''हाँ पढ़ा है एच टू ओ।''

''इसका मतलब क्या है ?''

''इसका मतलब है कि पानी में एक अंश ऑक्सीजन व दो अंश हाइड्रोजन गैस है।''

''पर बेटा मुझे तो नहीं दिखता कि उसमें गैस है। वह तो तरल है। गैस हो तो उड़ जाना चाहिए, पर यह तो गिलास में भी रख दो तो रखा रहता है। गिर जाये तो बहता है। ये दो कहाँ हुए एक ही हैं।''

''अरे नहीं, पण्डितजी हमारे सर कह रहे थे कि यदि पानी को प्रयोगशाला में लेकर अलग किया जाये तो वह गैस बन जाता है, वह गैस ही है, पर जब दोनों मिल जाते हैं तो पानी के रूप में हो जाते हैं, परन्तु ऑक्सीजन का एक भी अंश हाइड्रोजन रूप नहीं होता और न ही हाइड्रोजन, ऑक्सीजन होती है।''

''शाबास बेटा तुमने बिलकुल सही कहा, पर बेटा मैं एक बात और पूंछूं ?''

''हाँ पूछिये न, पण्डितजी।'' पापा ने विनम्रता से कहा।

''प्रयोगशाला में पानी में दो गैस हैं, पर यह पता कैसे चला ? और वे दोनों अलग कैसे हो गये ?''

''अरे पण्डितजी ! वे दो थे इसलिए अलग हो गए। अगर दो न होते तो अलग भी नहीं होते। वे मिले थे, इसलिए हमें एक दिख रहे थे।''

''पर बेटा लोगों को वे दो क्यों नहीं नजर आते ?''

''पण्डितजी पानी के दोनों अंशों को जानने के लिए वैज्ञानिक की नजर से ही देखा जा सकता है। ऐसे हर किसी को थोड़ी दिख जायेगा ?'' पापा ने होशियारी बताते हुए कहा।

''हाँ बेटा यह बात तो है। बेटा जैसे तुमने वैज्ञानिकों के प्रयोग के आधार पर एक दिखते पानी में दो चीज और उन दोनों को उनकी योग्य विधि से अलग भी कर सकते हैं, क्योंकि वे अलग हैं की बात समझ ली है। बेटा बस इसी तरह सर्वज्ञ भगवान रूपी वैज्ञानिक ने बताया है कि इस एक दिखते मनुष्य शरीर में भी दो हैं, एक जीव और दूसरा शरीर अर्थात् पुद्गल और उन्हें अलग-अलग जाना-पहिचाना जा सकता है।''

''पण्डितजी यदि यहाँ दो हैं तो उन दोनों की पहिचान कैसे कर सकते हैं।''

''बिल्कुल सही पूछा बेटा। इस एक मनुष्य शरीर में दो द्रव्य हैं, एक है देखने वाला अर्थात् जानने-देखने-सुख-दुःख का अनुभव करने वाला और एक है दिखने वाला गोरा-काला-मोटा-पतला होता हुआ शरीर। यह दोनों एक साथ रहते हैं, पर एक नहीं हैं।''

''पण्डितजी यह दो हैं यह कैसे पता लगता है ?''

''बेटा ! आप सुनते होंगे कि कोई आदमी मर गया या जानवर मर गया। मरने पर क्या हो जाता है ? क्या उसका वजन या रंग कम हो जाता है ?''

''मैंने देखा तो नहीं पर सुना जरूर है कि यह तो कुछ काम नहीं होता ?''

''तो फिर मरने में क्या होता है ?''

''मरने पर.....मरने पर तो बस वह आदमी किसी को जानता नहीं है, यदि उसे बांध दो या जला दो रोता नहीं है, दुःखी नहीं होता।''

''हाँ बेटा बस यही होता है। इसका मतलब है कि इसमें कोई चीज ऐसी थी जो सुख-दुःख को जानती थी, लोगों को जानती थी वह निकल गई। वह निकलने वाली चीज ही जीव है। वही जानने वाला आत्मा है। यह शरीर तो छूटने वाला ही है, छूटा हुआ ही है - ऐसा मानना चाहिए।''

''पण्डितजी ऐसा जानने से क्या लाभ है ?'' पापा ने पूछा।

''बेटा प्रिंस ! अभी हम शरीर और आत्मा को एक मानकर शरीर का पोषण करने वाले ही काम करते हैं।

खाना-पीना-नहलाना-धुलाना आदि सब कुछ शरीर के लिए करते हैं। उसी की सुविधायें जुटाते हैं और आत्मा को न जानने से उसको जानने का प्रयास भी नहीं करते। जिन राग-द्वेष-क्रोधादिभावों से आत्मा को दुःख होता है, उनको दूर नहीं करते और क्षमा-समता-संयम-अहिंसा आदि सुखदायक भावों को ग्रहण नहीं करते। जब यह भेदज्ञान हो जायेगा, तब हम आत्मा का हित करने वाले भावों को अच्छा मानने लगेंगे, उसी में हमारी भलाई है।''

''पर पण्डितजी शरीर को अभी हम कैसे अलग कर सकते हैं ?''

''बेटा ! शरीर और आत्मा को अलग करना नहीं है, वे तो अलग ही हैं, बस अलग जानना है। जैसे आप पूरे पानी में से ऑक्सीजन-हाइड्रोजन अलग तो नहीं करते, जानते हो कि पानी में दो चीजें हैं, बस इसी तरह जानना है कि शरीर और आत्मा अलग हैं और मैं आत्मा हूँ। मुझे वह काम करना है, जिससे आत्मा का हित हो।''

''पण्डितजी आज तो आपने बहुत बड़ी बात बहुत सरल ढंग से बता दी। धन्यवाद पण्डितजी।'' ❍

12

पापा ने समझा दिया कर्ता-कर्म

रविवार का दिन था, पापाजी अपना होमवर्क करने के बहाने टाइमपास कर रहे थे।

इस दिन दुकान बन्द रहती थी तो दादाजी भी घर पर ही थे। पापा के दादा-दादी, मेरे दादा-दादी और पड़ौस के दादा-दादी अपने गुजरे जमाने की बातें कर रहे थे। यह एक मनोविज्ञान है कि सबको अपना जमाना अच्छा और दूसरे का

जमाना/समय खराब लगता है। अपना किया हुआ अच्छा लगता है और दूसरे का बुरा।

पड़ौस वाली दादी अपना यशगान कर रही थीं "जब मैं ब्याह करके आई तब इनके घर में खाने को भी नहीं था। पता नहीं क्या देखकर मेरे पिताजी ने इनके गले मड़ दिया। पर मैंने बाद में घर को इस तरह सम्हाला कि किराये के मकान से अपना घर हो गया, बेटे को पढ़ा-लिखा कर इंजीनियर बना दिया।"

पापा गर्दन नीचे किए हुए ही बोले "अच्छा"

दादी अपनी रफतार में ही बोलती गईं "अच्छा नहीं तो और क्या ? अब तो यह भी आजकल खूब कमा रहे हैं, दो प्लॉट भी ले लिए सब मजे में हैं, सब काम पर लगा दिये और अब क्या करना ?"

पापा के दादाजी बोले – "अरे भई हम भी बड़ी मुसीबत में ही थे। हम चार भाई। मैं सबसे बड़ा अब समझ लो पूरा घर खर्च मुझे ही चलाना पड़ता था। पिताजी में कुछ ज्यादा समझ थी नहीं, छोटासा काम करके धर्मध्यान में ही लगे रहते थे। सारी जिम्मेदारी मेरे ऊपर ही थी, मैंने अपनी शादी की, फिर तीनों भाइयों को पढ़ाया-लिखाया, बड़ा किया उनकी शादियाँ कीं और मेरे दादाजी की तरफ इशारा करते हुए बोले

इसको पढ़ाया–लिखाया, दुकान खुलवाई, इसकी शादी की अब जाके घर बैठे रहते हैं तो लोग समझते हैं कि जैसे हमने तो कुछ किया ही नहीं है, हम तो किसी काम के नहीं हैं, ये मेरे साहबजादे ये एक पप्पू हैं, उसकी पढ़ाई की चिंता में ही लगे रहते हैं, मैं कहता हूँ, सब हो जायेगा, तो कहते हैं कि पापाजी आप नहीं समझते आज की पढ़ाई। अच्छा हम नहीं समझते हमारे बाल तो धूप में सफेद हुए हैं।

अरे भई पहले भी अ के बाद आ आता था, आज भी तो वैसा ही होगा।

मेरे पापा अचानक खड़े हुए और अपने पापा के पास रूठते हुए बोले ''पापाजी पापाजी मेरी भी शादी करवा दो न।'' सब सुनकर एकाएक उसकी ओर देखने लगे कि यह क्या कह रहा है। सबके चेहरे पर उनका भोलाभाला चेहरा देखकर हंसी भी आ गई।

दादाजी बोले ''अरे अपना होमवर्क कर बेटा। शादी जब तुम बड़े होओगे तब होगी।''

''पापा तो मुझे बड़ा कर दो न।''

''अरे बेटा ! ऐसा कोई बड़ा थोड़े ही कर सकता है।''

पापाजी को याद आया कि अभी दादाजी कह रहे थे कि उन्होंने 3 भाइयों को बड़ा किया। वे उछलकर अपने दादाजी

के पास पहुँचे और बोले ''दादाजी दादाजी आप मुझे बड़ा कर दो न और मेरी भी शादी करा दो न।''

दादाजी बोले ''बेटा बड़ा करना और शादी कराना कोई हंसी खेले थोड़े ही है।''

पापा मासूमियत से बोले ''आपने तो 3 दादाजी को बड़ा किया था न।''

''अरे बेटा ! वह तो अपनी उमर में बड़े हुए थे।''

पापा पड़ौस वाली दादा-दादी की तरफ देखते हुए बोले – ''दादी आप बोलो न, दादाजी से कि मेरी भी शादी करा दें, आपने भी अपने बेटे की कराई थी।''

''बेटा वह तो अपने समय पर हुई थी, ऐसे थोड़ा ही कोई शादी करा सकता है। अभी तो आप पढ़ाई करो।''

पापाजी बोले – ''दादाजी आपने सबको पढ़ाया तो मुझे भी जल्दी पढ़ा दो न।''

दादाजी बोले – ''बेटा कोई एक दिन में पढ़ा कर इंजीनियर थोड़े ही बना सकता है, वह तो पढ़ाई करके इंजीनियर बने थे। बेटा तुम भी जब तुम्हारी उमर इंजीनियर बनने की होगी, तब बन जाओगे और तुम्हारी उमर शादी लायक हो जायेगी, तब शादी भी जायेगी।''

मेरे पापा बड़े ही भोलेपन से रूठते हुए गुस्से में बोले, आप सब लोग झूठ बोलते हैं, बड़ी-बड़ी बातें करते हैं। जब सभी अपनी उमर पाकर बड़े हुए, स्वयं पढ़कर इंजीनियर हुए, समय आने पर ही शादी हुई। बिना समय के न मुझे बड़ा कर सकते हैं, न पढ़ा सकते हैं, न शादी करा सकते हैं, तब फिर क्यों गप्पें लगा रहे हो ? वे सब काम हुए और आप सब जबसे लगे हुए हैं - मैंने किये, मैंने किये। आप सब झूठे हैं, मुझे आपसे बात नहीं करनी और न ही सुननी।'' पापा ऐसा कहकर पैर पटकते हुए वह खेलने चले गये।

परन्तु मेरे छोटे से पापा की कही हुई बात में अनेक प्रवचन दिखने लगे कि ''होता स्वयं जगत परिणाम मैं जग का करता क्या काम ?'' सच में होते हुए कार्य के कर्ता बन रहे हैं, यही हमारी अज्ञानता है।

मेरे दादाजी हंसते हुए सबकी ओर देखकर बोले ''अब समझ में आया पप्पू क्या कहकर गया है ?''

सब हंसते हुए बोले ''हाँ जो बात हमें प्रवचनों में समझ में नहीं आई, वह पप्पू की एक बात से समझ में आ गई।''

''होते हुए काम को जानो, ज्ञाता हो ज्ञाता ही रहो।
पर के कर्ता बनकर बंधु, तुम क्यों व्यर्थ ही कष्ट सहो।।''

○

13

पापा को समझ आई प्रतिमा की आवश्यकता

सर्दियों का समय था। मेरे पापा अपने पापा के साथ रजाई में लेटे हुए थे। दादाजी नंदीश्वर द्वीप में विराजमान जिनबिम्बों के बारे में बता रहे थे और पापा सुन रहे थे। पापा के स्कूल में कुछ ऐसे मित्र भी थे जो कभी मंदिर नहीं जाते थे, न ही कभी कहीं की यात्रायें की थीं। जब वे आपस में मिलते तो वे इन सब कार्यों को व्यर्थ के कार्य कहते और मंदिर जाने वालों की हंसी उड़ाते हुए कहते कि देखो तो कितने बेवकूफ लोग हैं इस देश में कि स्वयं तो इतने समझदार हैं और पत्थरों के सामने जाकर माथा टेकते हैं।

दूसरा बोला अरे और मूर्खता तो देखो कि स्वयं ही तो बाजार से मूर्तियाँ खरीद कर लाते हैं, मंदिर में बैठाते हैं और फिर उनके सामने घुटने टेककर नमस्कार करते हैं। जिन मूर्तियों पर कारीगर पैर रखकर उन्हीं पर बैठकर बनाते हैं, उनकी ही पूजा करते हैं। ऐसे मूर्खों के कारण ही तो अपना देश पिछड़ा हुआ है।

पापा के दिमाग में भी यह सब बातें सुनकर घर कर गईं थीं। जब उन्होंने अपने पापा से उन प्रतिमाओं के बारे में सुना व उनकी महिमा सुनी कि वे प्रतिमायें ऐसी लगती हैं, जिनके देखते ही सम्यग्दर्शन हो जाये।

पापा यह सुनते हुए लेटे-लेटे ही बोले – 'पापा मुझे तो इन फालतू की बातों पर विश्वास नहीं होता।''

दादाजी पापा की यह बात सुनकर चौंक गये। वह बोले ''प्रिंस बेटा यह तू क्या कह रहा है ?''

''पापा में सही कह रहा हूँ, यह बाजार से लाया हुआ पत्थर पूज्य कैसे हो गया ? इससे हमें सम्यग्दर्शन कैसे हो सकता है ? पाषाण परमात्मा हो गया यह तो मेरी समझ में नहीं आता। किसी का थोड़ा सा दिल कठोर हो तो हम उसकी पत्थर दिल कहकर निंदा करते हैं और यहाँ है कि पत्थर को ही परमात्मा मानकर पूजे जा रहे हैं।''

दादाजी को पापा की बातें सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ ? क्योंकि हमारे घर का वातावरण बहुत ही धार्मिक वातावरण है। उन्होंने पूछा - ''बेटा इतनी ऊँची-ऊँची बातें तू कहाँ से सीख कर आया ?''

''मैं स्कूल जाता हूँ, तो ऐसे ही फालतू में नहीं जाता हूँ, वहाँ मेरे मित्र भी मुझे बहुत कुछ बताते हैं।''

''अच्छा तो यह सब दोस्तों से सीखा है।'' दादाजी मन में सोचते हुए पापा से बोले - ''बेटा तुम्हारे तर्क बड़े जोरदार हैं। तुम कक्षा 10 तक आते-आते इतना सोचने लगे शाबास बेटा।''

बच्चे प्रशंसा के भूखे रहते हैं, जैसे ही दादाजी ने प्रशंसा की, वह अपने आप ही रजाई के अन्दर गरम तो थे ही नरम भी हो गये ?

दादाजी ने पूछा – ''बेटा अभी–अभी अक्टूबर को तुम्हारी स्कूल वाले तुम्हें कहाँ ले गये थे ?''

''पापाजी, गांधी मैदान में।''

''वहाँ क्या कार्यक्रम हुआ ?''

''वहाँ पर गांधीजी की प्रतिमा पर माल्यार्पण हुआ, सांस्कृतिक कार्यक्रम हुए, गांधीजी की शिक्षायें बताईं।''

''बेटा गांधीजी की प्रतिमा तो पत्थर है, गांधीजी को मरे हुए तो वर्षों हो गये, उस पत्थर को तुम्हारे इतने पढ़–लिखे अध्यापकों ने और नेताओं ने मालायें क्यों पहनाईं। तुमने उनसे नहीं कहा कि तुम इतने पढ़े–लिखे होकर पत्थर को माला क्यों पहना रहे हो ?''

''अरे नहीं पापा। वहाँ ऐसे थोड़ी ही कह सकते हैं। गांधीजी की प्रतिमा राष्ट्रपिता की प्रतिमा है, हमें सबको उसका आदर करना चाहिए।''

''वाह बेटा ! महात्मा गांधी की प्रतिमा का आदर करना चाहिए और भगवान की प्रतिमा को नमस्कार करें तो वह पत्थर की है, ऐसा सोचना चाहिए।''

दादाजी की बातें सुनकर पापा का बाल मन असमंजस में

पड़ गया, मित्रों की बात सही या पापाजी की। पापा सोच ही रहे थे कि दादाजी बोले – ''बेटा प्रिंस ! एक मिनिट रजाई के बाहर तो आओ और वह फोटो तो उठाना।'' सामने ही पापा के दादाजी का फोटो रखा हुआ था, उसकी ओर इशारा करते हुए दादाजी ने कहा।

पापा तुरन्त उठे और वह फोटो उठा लाये।

दादाजी ने कहा – 'इसे नीचे रख दो।' पापा ने संकोच करते हुए फोटो नीचे रख दी।

दादाजी बोले – ''प्रिंस अब इस फोटो पर अपना पैर रखो।''

यह सुनते ही पापा भले ही बच्चे थे, पर अकल के कच्चे नहीं थे, वह घबरा गये कि उनके पिताजी ऐसा क्यों कह रहे हैं। वह चुपचाप खड़े रहे। दादाजी फिर बोले बेटा ''इस फोटो पर पैर रखो।''

पापा अब चुप नहीं रहे, बोले ''पापाजी मैं ऐसा नहीं कर सकता। मैं अपने दादाजी पर पैर नहीं रख सकता।''

''अरे मूर्ख ये दादाजी थोड़े ही हैं, यह तो कागज है।''

''नहीं पापा ! आप कैसी बातें कर रहे हो यह दादाजी ही

हैं। इस फोटो में दादाजी ही मुझे दिख रहे हैं।''

दादाजी बोले ''बेटा ! फोटो अपनी जगह रख दो और लेट जाओ बाहर सर्दी ज्यादा है।''

पापा समझ नहीं पाये कि उनके पापा ने क्या कहा है, ऐसा क्यों कराया है, वे फोटो रखकर चुपचाप लेट गये, तब दादाजी बोले – ''बेटा जिस तरह तुम्हें दादाजी के फोटो में कागज नहीं दादाजी दिखते हैं, उनका प्यार दिखता है, उनका दुलार दिखता है, जैसे नागरिकों को गांधीजी की प्रतिमा में गांधीजी दिखते हैं, उनकी शिक्षायें, उनका देश के प्रति योगदान दिखता है, उसी प्रकार बेटा जिनेन्द्र के भक्त को पाषाण की प्रतिमा में भी पाषाण नहीं भगवान दिखते हैं, उनकी वीतरागता दिखती है, उनकी शान्ति दिखती है और वह शान्ति उन्हें निजात्मा से प्राप्त हुई, मैं भी निजात्मा को जानकर परमात्मा बन सकता हूँ, सुखी हो सकता हूँ, यह शिक्षा दिखती है।''

पापा अचानक उठकर बैठे गये अैर बोले – ''पापा आइ एम सॉरी। मैं मित्रों की बातों में आकर बहक गया था। मेरी समझ में आ गया कि जिन प्रतिमा में जिनेन्द्र के ही दर्शन करना चाहिए। मुझे मंदिर में लिखी वे पंक्तियाँ अब समझ में

आ रही हैं कि '**जिन प्रतिमा जिन सारखी**' **और जिनदर्शन निज दर्शन खातिर, निजदर्शन ही जिनदर्शन है।**"

"शाबास बेटा ! जैनदर्शन सर्वज्ञ भगवान का दर्शन है, उसमें कोई भी कपोल कल्पित बातें नहीं हैं। अपनी बुद्धि से कभी कोई बात समझ में न आये तो समझने की कोशिश करना, उसे गलत मत समझना, न मजाक बनाना।"

"जी पापाजी।"

"शाबास बेटा अब सो जाओ।"

"जय जिनेन्द्र पापाजी।"

जय जिनेन्द्र बेटा। पापा के सिर पर प्यार से हाथ फिराते हुए शुद्धोऽसि-बुद्धोऽसि गुनगुनाते हुए मेरे पापा को उनके पापा ने सुला दिया। ❍

ज्ञान स्वभाव निराला...

ज्ञान न ज्ञेयों में जाता है, ज्ञेय स्वयं में नहीं आते।
ज्ञान की निर्मलता है ऐसी, ज्यों के त्यों वे झलकाते।।
ज्ञायक को ही ज्ञेय बनाओ, और बनाओ तुम श्रद्धेय।
ज्ञेयों की चिन्ता से बस हो, ज्ञायक ही है मेरा ध्येय।।

14

पापा ने सीखा आतिथ्य

मेरे दादाजी बहुत ही सरल स्वभावी व वात्सल्यभाव वाले थे। उनकी नगर में पहचान पैसे के कारण नहीं, परन्तु उनकी उदारता के कारण थी। नगर में कोई भी आता, वे उसे सादर घर पर लाते और जो कुछ भी उपलब्ध होता वात्सल्यपूर्वक खिलाते-पिलाते। दादाजी को स्वयं खाने से अधिक तृप्ति दूसरों को खिलाने में होती थी।

दशलक्षण पर्व पर या अन्य प्रसंगों पर जब भी विद्वान आते हमारे ही घर पर रहते थे। लोग कहते कि आप परेशान क्यों हो रहे हैं, मंदिरजी के पास ही समाज की धर्मशाला है, पण्डितजी वहीं रुक जायेंगे, पर दादाजी कहते अरे भइया इसमें परेशानी की क्या बात है। विद्वान को हमने तीर्थंकरों की वाणी सुनाने को बुलाया है और उन्हें हम धर्मशाला में ऐसे ही अकेले ठहरा दें, यह उचित नहीं है। वे हमारे घर पर रहते हैं तो महिलायें, बच्चे उनके पास बैठकर कुछ न कुछ सीखते ही हैं, अतः हम तो उन्हें घर पर ही ठहरायेंगे। यदि विद्वानों

को हमारे यहाँ ठहरने में कोई असुविधा हो तो बात अलग है।

परन्तु मुझे जहाँ तक पता लगा है, कभी भी किसी भी विद्वान को हमारे दादाजी व दादीजी की सरलता व सेवाभाव से कभी भी असंतुष्टि नहीं हुई, बल्कि उन विद्वानों से पारिवारिक प्रेम हो गया। वे विद्वान जब भी हमारे नगर के आसपास से भी निकलते तो हमारे घर आना नहीं भूलते।

पर्व के दिनों के अलावा भी कोई अन्य साधर्मी किसी व्यापारिक या अन्य कार्य से भी आता हो तो वह किसी भी प्रकार के सहयोग के लिए निस्संकोच हमारे घर आ जाता।

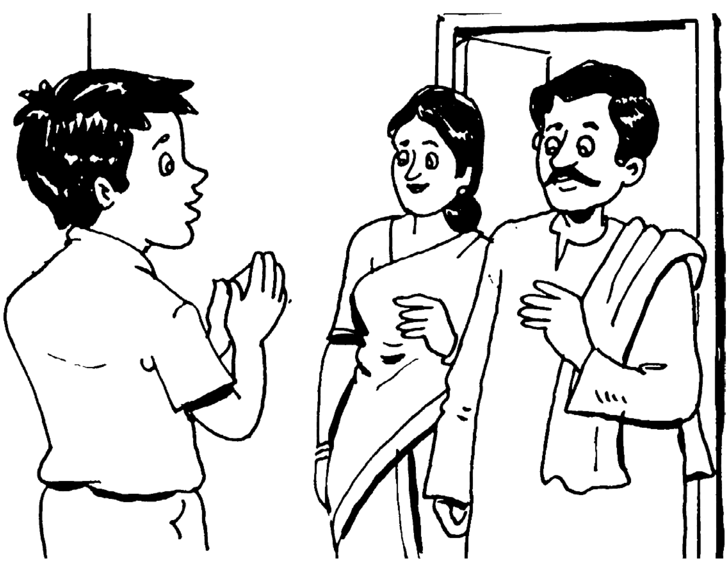

मेरे छोटे से पापा यह सब देखते तो उन्हें बड़ा अटपटा लगता। वह मन ही मन सोचते हमारा घर घर नहीं धर्मशाला बन गया है। घर छोटा था तो कई बार साधर्मी के रुकने के लिए पापा को अपना कमरा छोड़कर बाहर हॉल में सोना पड़ता था, तब उन्हें बहुत बुरा लगता था। पापा तो जब देखो किसी न किसी को मेहमान बनाकर ले आते हैं और लोग भी देखो बिना बुलाये भी अपना मुँह उठाये चले आते हैं।

उन्होंने गणित अभी सीखी ही थी। गणित के सवाल के स्थान पर वह बैठे-बैठे एक दिन कॉपी में सवाल कर रहे थे। जोड़-घटाना चालू था। उंगलियों पर लिख रहे थे, मुँह से भी कुछ बोल रहे थे। अचानक पापा दादाजी से बोले – ''पापा आप एक महीने में कितना कमाते हैं?''

दादाजी बोले ''बेटा ! तुम्हें हमारी कमाई से क्या काम आ गया, तुम्हें कोई किताब कॉपी लेना हो तो बताओ।''

''नहीं मुझे कुछ नहीं चाहिए। मैं तो एक हिसाब कर रहा हूँ, उसके लिए पूछ रहा हूँ।''

''अरे वाह बेटा सवाल करते हुए ऐसा कौन सा सवाल आ गया, जिसमें मेरी कमाई की जरूरत पड़ गई।''

''पिताजी, मैं हिसाब लगा रहा था कि एक आदमी के

नाश्ते भोजन का अनुमानित कितना खर्च होगा और अपने घर में घर के सदस्यों के अलावा आप महीने में 5–7 फालतू लोगों को तो पकड़ ही लाते हो तो उनका खर्च मिलाकर कुल खर्च कितना होगा और आपकी कमाई में से घटायें तो आपको कितना बचता होगा, यह देख रहा था।''

''अरे बेटा तुम साधर्मियों/विद्वानों को फालतू का कह रहे हो। यह अच्छी बात नहीं है।''

''पर पापा वे हमारे कौन से रिश्तेदार लगते हैं, जो उन्हें हम जिमाते रहें और घर में ठहराते रहें ?''

''बेटा ! वे हमारे रिश्तेदारों से भी अधिक हैं। रिश्तेदार तो राग–द्वेष बढ़ाकर पाप में कारण बनते हैं और साधर्मियों को देखकर तो हमें धर्म याद आता है, उनसे धर्म चर्चा होती है, अत: वे पापों से बचाकर पुण्य में लगते हैं। हमारे अज्ञान को दूर करने में कारण बनते हैं। उनसे तो हमें अपने सगे रिश्तेदारों से भी अधिक प्रेम रखना चाहिए और वात्सल्यभाव पूर्वक बिना किसी अपेक्षा के उनकी सेवा करना चाहिए।''

''पर पापा इतना खर्च होगा तो अपना घर खर्च कैसे चलेगा ?''

''बेटा घर खर्च की चिन्ता तुम क्यों करने लगे ? हमारा

जितना पुण्य होगा, उतना तो आयेगा ही और बेटा साधर्मीजन तो खर्च करने को कहते नहीं हैं। साधर्मी के लिए बस वात्सल्य चाहिए, आदर भाव चाहिए। बिना आदर के तो तुम मिठाई भी खिलाओ तो भी उसकी कोई कीमत नहीं है। बेटा हमने तो पढ़ा है कि सज्जनों के घर इन चार चीजों की कभी कमी नहीं होती –

तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सुनृता।
सतामेतानि हर्म्येषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन।।

अतिथियों के स्वागत के लिए सज्जनों के घर पर बैठने के लिए आसन, रुकने के लिए भूमि अर्थात् स्थान, पीने के लिए छना हुआ ठण्डा पानी और मधुर, प्रिय सत्यवचन। बेटा अगर पैसा न हो तो भी इतनी चीजें तो हमारे पास रहेंगी ही। हम अपनी मधुर वाणी से ही सही उनका स्वागत करेंगे उनका आदर करेंगे।''

''अच्छा पिताजी क्या ऐसे भी आतिथ्य हो सकता है?''

''हाँ बेटा क्यों नहीं यदि पैसे से ही आतिथ्य हो तो सेठ ही आतिथ्य कर सकेंगे, गरीब लोग तो कभी कर ही नहीं सकेंगे। इसलिए बेटा दरिद्रता की सोच नहीं रखना। दरिद्रता का भाव जीवन में दरिद्रता लाता है, कभी छोटा मत सोचो

कहा भी है **पांव की मोच और छोटी सोच कभी** आगे नहीं बढ़ने देती।''

मेरे छोटे से पापा अपने पापाजी की बात सुनकर गदगद हो गये। हिसाब का कागज फाड़ते हुए बोले ''पापाजी अब मैं कभी ऐसी छोटी बात नहीं सोचूँगा। साधर्मीजन को ही अपना हितैषी/रिश्तेदार मानूँगा और अपने घर में साधर्मियों के लिए दरवाजे हमेशा खुले रहेंगे। आपके साथ अब मैं भी उनकी सेवा उत्साह से करूँगा।''

''शाबास बेटा ! तुम्हारे जैसी भावनाओं वाले बेटे हर घर में हों।'' ❍

सहयोग ?

बेटियाँ
माता-पिता के लिए
हर समय, हर तरह
सहयोग करने के लिए तैयार हो रही हैं
शायद इसीलिए
इस बेतहाशा महँगाई के दौर में
इतने छोटे-छोटे
कपड़े पहिनकर
घर खर्च कम कर रही हैं ?

15

पापा ने सीखा दादा-दादी की सेवा करना

मेरे पापा पढ़ने व खेलने-कूदने में मस्त रहते थे। गर्मियों की छुट्टियाँ चल रही थीं। मित्र मण्डली के साथ मना करने पर भी पापा दिनभर घूमते-फिरते। उनके बचपन के समय में आज जैसे टी.वी. और वीडियो का प्रचलन तो था नहीं, अतः छुपनी/पकड़नी/गिल्ली डण्डा आदि आउटडोर और सोलहगोटी जैसे इनडोर गेम ही उस समय के खेल थे। खाने-पीने की चिन्ता किये बिना दिनभर खेलते।

उस समय छुट्टियाँ आती थीं तो बस छुट्टियाँ ही आया करती थीं, आज जैसे अनेक कोचिंग/क्लासेस या स्वीमिंग/कराटे आदि का दौर नहीं था। नदी में ही स्वीमिंग हो जाती। एक ओर उस समय के बच्चे ठंड में पानी के स्पर्श का त्याग किये रहते थे तो दूसरी ओर गर्मियों में तो जब मन हुआ नदी में पहुँचे नहा लिया, वहीं कपड़े गीले हो जाते थे, वहीं सूख जाते थे।

गाँव के वे दृश्य जब मैंने दादाजी से सुने और अपने पापा

के बचपन की कहानियाँ सुनीं तो आश्चर्य होता है कि ऐसा भी होता होगा। हम तो चार दीवारी और मोबाइल के गेम्स में ही फंस कर रह गये हैं।

एक दिन दोपहर में मेरे पापा अपने पापा के पास लेटे हुए थे। खेलने से थके हुए थे, वे पापा से बातें करते हुए सोने की कोशिश कर रहे थे, तभी उनके दादादी को जोर से खांसी उठी तो मेरे दादाजी तुरन्त अपने पापा के पास पहुँचे, उन्हें पानी पिलाया और दवा दी। उन्हें दवा देने के बाद वे फिर से अखबार पढ़ते हुए बैठ गये।

मेरे छोटे से पापा अपने दादाजी की खांसी और पापा के उठकर जाने से आराम में दखल होने से झल्लाते हुए बोले – ''पापाजी ! दादाजी–दादीजी कुछ करते तो हैं नहीं दिनभर ऐसे ही बैठे रहते हैं, इनका अपने घर में क्या काम है और फिर खांस–खांस कर हमारी नींद भी खराब करते रहते हैं।''

दादाजी अपने पप्पू की बात सुनकर दुखित होते हुए थोड़ा गुस्से में बोले ''बेटा ! आप यह क्या कह रहे हो। दादा–दादी फालतू नहीं हैं। वे काम नहीं करते तो क्या उन्हें वृद्धाश्रम में भेज दें।'

''हाँ भेज ही देना चाहिए। पड़े–पड़े खाते ही तो रहते हैं।''

''अच्छा बेटा तो क्या जब आप जवान हो जायेंगे और मैं बूढ़ा तो आप हमें भी वृद्धाश्रम भेज देंगे।''

''नहीं पापा आप क्यों बूढ़े होंगे। मैं आपको कभी बाहर नहीं जाने दूँगा।'' ऐसा कहते हुए पापा अपने पापा से लिपट गये।

दादाजी बोले – ''बेटा आपके दादाजी भी मेरे जैसे जवान थे। मैं तुम्हारे जैसा बच्चा था। मैं कभी कुछ काम नहीं करता था। आप भी अभी कुछ काम नहीं करते, कमाते नहीं हो। पर उन्होंने हमें फालतू का समझकर न ही हमने आपको बेकार,

निकम्मा समझकर अनाथालय भेजा। बल्कि हमें सब कुछ सिखाया। चलना/बोलना/खाना/पीना/कमाना सब कुछ। मैं तो कुछ जानता ही नहीं था, आपके दादाजी-दादीजी ने ही हमें इस योग्य बनाया, सबसे बड़ी बात धर्म मार्ग में लगाकर हमें हर परिस्थिति में समताभाव रखना सिखाया। बचपन की सभी कमियों को नजरअंदाज कर हमारा लालन-पालन किया। इस कर्ज को हम कुछ भी करके इस जिंदगी में नहीं उतार सकते। कहा भी है -

यं मातापितरौ क्लेशः सहेते सम्भवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि।।

बेटा माता-पिता अपनी संतान को जन्म देने और पालन करने में जो कष्ट सहन करते हैं, उसका उपकार सौ वर्षों में भी नहीं चुकाया जा सकता। इसलिए बेटा हमेशा उनकी आज्ञा पालन और सेवा करना चाहिए।

जिस तरह बचपन में उन्होंने हमारी सेवा बहुत ही प्यार से की थी, उसीप्रकार हमें भी अब वृद्धावस्था में आदर के साथ उनकी सेवा करना चाहिए।''

''पापाजी आइ एम सॉरी। मैंने बिना कुछ सोचे दादाजी के बारे में जो कुछ भी कहा उससे आपको बुरा लगा, मैं

आपको प्रॉमिस करता हूँ, अब कभी ऐसा नहीं सोचूँगा। मैं भी उनकी बात मानूँगा और उनकी सेवा भी करूँगा।''

''शाबास बेटे ! मुझे पता है मेरा प्रिंस तो किंग है। बेटा ध्यान रखना बड़ों की सेवा करने से उनके पास बैठने से हमारे ज्ञान की वृद्धि होती है, जैसा कि सुभाषितकार ने कहा है –

अभिवादन शीलस्य, नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशो बलम्।।

अर्थात् जो बड़ों को आदर पूर्वक अभिवादन करता है और हमेशा वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध लोगों के पास बैठता है, उनकी संगति करता है, उसके यह दो काम करने से उसे चार लाभ होते हैं, उसकी आयु, विद्या, यश और बल की वृद्धि होती है।''

पापा का दिमाग तेज तो था ही, यह सुनते ही वे बोले ''पापाजी आपने तो कहा था कि कोई किसी का कुछ भी बना–बिगाड़ नहीं सकता, परन्तु अभी आप कह रहे हैं कि दूसरों की सेवा करने से आयु, विद्या आदि बढ़ जाते हैं।''

दादाजी हंसते हुए बोले ''बेटा ! परन्तु आपने निश्चय–

व्यवहारनय के बारे में पढ़ा है न, यह औपचारिक बात है। सदाचार की बात है। जिसे यह पता लगता है कि कोई हमारा कुछ नहीं कर सकता, प्रत्येक वस्तु स्वतंत्र है, यह बात समझ में आने पर यह बात समझाने वाले के प्रति विनयभाव जागृत होता है, वही सच्चा विनयभाव है। अभी तुम आराम करो। तुम भी जैसे-जैसे स्वाध्याय करोगे, सब समझ में आने लगेगा।''

दादाजी ने पापा की तरफ देखा तो पापा तो अपने पापा की गोद में सिर रखे हुए सो गये थे, पर चेहरे पर अभी भी भोली-भाली मुस्कान थी। ❍

व्यस्त

सच में लगता है
आज के बच्चे
बहुत बड़े और व्यस्त हो गये हैं
तभी तो
घर पर जन्मदात्री माँ से
और
मंदिर में जन्म हात्री जिनवाणी माँ से
बहुत दूर हो गये हैं।

मैं नहीं चाहता...

(एक पिता/शिक्षक की पुत्र/शिष्य के प्रति भावना)

मैं नहीं चाहता कि
मेरी संतान ऐसा/इतना पढ़े कि
वह जिनवाणी माँ एवं
अपनी माँ की भाषा भूल जाये।
मैं नहीं चाहता कि –
वह इतना आगे बढ़े कि
धर्म पिता देव–शास्त्र–गुरु व
मुझसे बात करना ही भूल जाये।
मैं नहीं चाहता कि –
वह इतनी ऊँची मंजिल चढ़े कि
उसे अपने में उतरने का समय ही न रह जाये।
मैं नहीं चाहता कि –
उसे देश जाने, विदेश जाने
वह भी सबको जाने/पहचाने पर
तीर्थंकरो/आचार्यों/अपने पुराण पुरुषों को ही भूल जाये।
पर क्या चाहा हुआ होता है ?
होगा तो वही, जो क्रमबद्ध में होगा।
यह जानते/मानते हुए भी
मैं ऐसा चाहता हूँ कि
वह सबको जाने या न जाने
सब उसे जाने या ना जाने
पर वइ इस जीवन में
अपने को अवश्य जाने–पहचाने और माने
और सुखी हो जाये।

हम चाहते हैं...

(एक शिक्षक की भावना)

हम चाहते हैं
ऐसे युवा वर्ग का निर्माण
जिनका जीवन हो
तत्त्वज्ञान से सुरभित,
शरीर हो
जिनवाणी के प्रचार-प्रसार में समर्पित
मन में हो
देव-शास्त्र-गुरु के प्रति भक्ति
आचरण में हो
संयम, सदाचार और जैनाचार यथाशक्ति
हृदय में हों
महापुरुषों की स्मृतियाँ
जो हों विवेकी, स्वाभिमानी
पर
विनयशील अरु निरभिमानी।
हे प्रभुवर ! हे गुरुवर !
सामर्थ्य दो,
स्याद्वादमयी वाणी से
वात्सल्य एवं प्रभावना की भावना लेकर
मार्ग में बढ़ सकूँ
अपने से अच्छा इन छात्रों को गढ़ सकूँ
जिनका लक्ष्य हो
केवल निर्वाण
हम चाहते हैं
ऐसे युवा वर्ग का निर्माण

हम

हम
भवभय नाशक जिनवाणी
पढ़ाते तो हैं पर
पढ़ते नहीं।
हम
सबको सुखदायक तत्त्वज्ञान
समझाते तो हैं, पर
समझते नहीं
हम
वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु की
पूजन करना सिखाते तो हैं, पर
स्वयं करते नहीं।
हम
आत्महित के मार्ग पर
सबको चलाते तो हैं, पर
चलते नहीं।
हम
अनंत संसार के भय से
सबको डराते तो हैं पर
डरते नहीं।
बस इसीलिए हम
धर्म/सुख के मार्ग पर
सबको बढ़ाते तो हैं पर
स्वयं बढ़ते नहीं।।

समर्पण द्वारा प्रकाशित अन्य साहित्य

समर्पण का मासिक प्रकाशन संस्कार सुधा

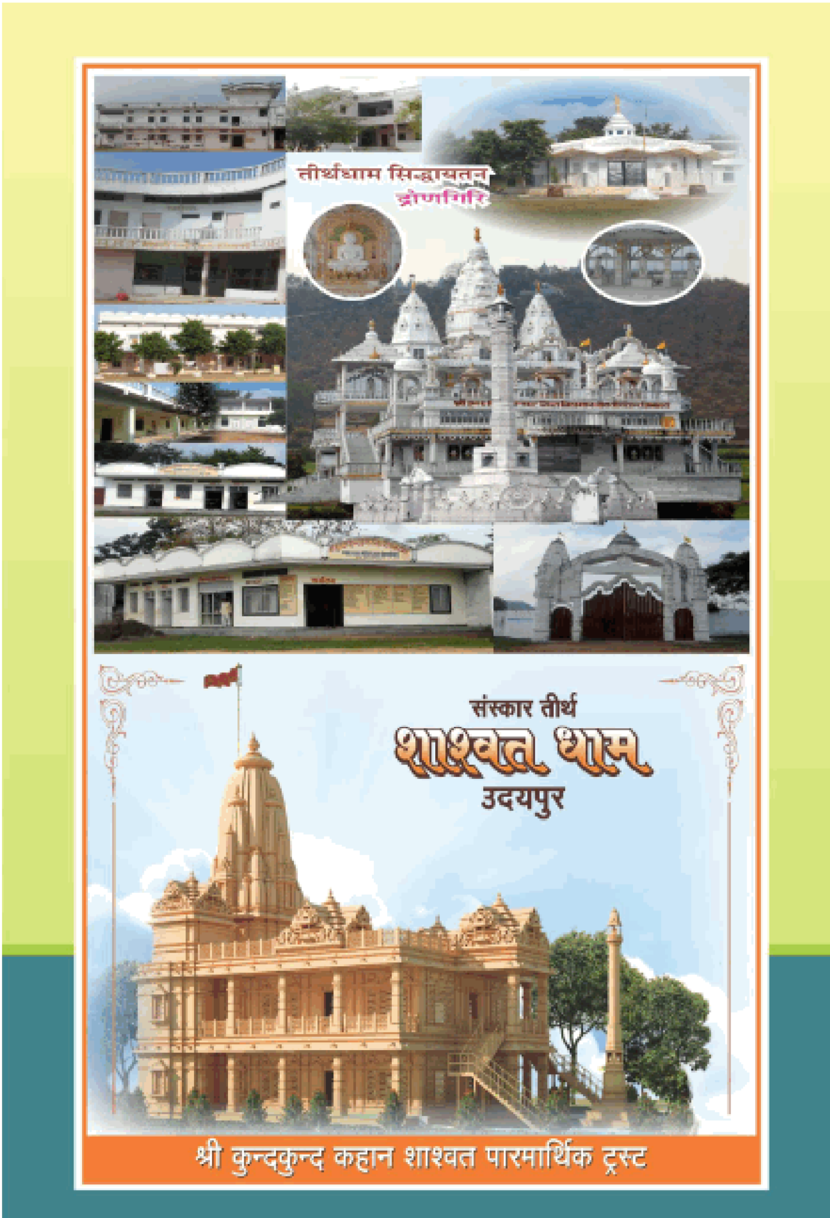

तीर्थधाम सिद्धायतन
द्रोणगिरि
संस्कार तीर्थ
शाश्वत धाम
उदयपुर
श्री कुन्दकुन्द कहान शाश्वत पारमार्थिक ट्रस्ट